चेतना विकास मूल्य शिक्षा

कक्षा 6

अनुक्रमाणिका

भाग	पाठ	नाम	पृष्ठ सं.
		वंदना	
1. मानव लक्ष्य			
	पाठ 1	समाधान	5
	पाठ 2	समृद्धि	7
2. अस्तित्व सहज व्यवस्था			
	पाठ 3	अस्तित्व सहज व्यवस्था	12
	पाठ 4	हमारी धरती एक व्यवस्था	16
	पाठ 5	पदार्थ अवस्था	19
	पाठ 6	प्राण अवस्था	22
	पाठ 7	जीव अवस्था	24
	पाठ 8	ज्ञान अवस्था	27
	पाठ 9	मानव संचेतना	30
3. अखंड समाज			
	पाठ 10	परिवार व्यवस्था	33
	पाठ 11	मानव–संबंध	36
	पाठ 12	मानव–मूल्य	39
	पाठ 13	सामाजिक पूरकता	44

पाठ 14	उत्सव	48

4. सार्वभौम व्यवस्था

पाठ 15	मानवीय संस्कृति	51
पाठ 16	मानव इतिहास	55
पाठ 17	मानवीय व्यवस्था	60

(क) शिक्षा–संस्कार

पाठ 18	दृष्टा, कर्ता, भोक्ता	64
पाठ 19	प्रतीक	67
पाठ 20	इकाईत्व	69

(ख) स्वास्थ्य–संयम

पाठ 21	शरीर–व्यवस्था	74
पाठ 22	आहार और औषधि	76

(ग) उत्पादन–कार्य

पाठ 23	मानवीय उत्पादन–कार्य	80

(घ) विनिमय–कोष

पाठ 24	मानवीय विनिमय–कोष	85

(ङ) न्याय–सुरक्षा

पाठ 25	न्याय–सुरक्षा	87

वंदना

वंदना उनकी करें, जिनसे सुशोभित है धरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

जिनसे दिशा हमको मिली, नित मानवीय मार्ग की।
पथ मिला निश्चित हमें थी, कामना जिस मार्ग की।।
कृतज्ञता से सौम्यता की, नित्य आयी निरंतरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

जिनका है चिन्तन शुभ यही, कैसे हो मानव सुखमयी?
प्रेरणा से जिनकी है, मानव का जीवन सुखमयी।।
श्रद्धा समर्पित जिनसे आए, मानवीय परम्परा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

सबके सुख की कामना ले, रहती जिनकी कल्पना।
निकली जिनसे मानवीय पथ, हेतु निश्चित योजना।।
पूज्यता उन हेतु जिनसे, है सुसज्जित वसुन्धरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

– **प्रदीप पूरक** बिजनौर, (उ.प्र.)

पाठ–1

समाधान

मानव जाति एक है। मानव, चाहे किसी भी देश या प्रांत का हो, धर्म या सम्प्रदाय का हो विभिनन जीवन शैतियों के साथ रहने वाला ही क्यों न हो, हम उसे मानव के रूप में ही पहचानते हैं। मानव जाति के रूप में एक होने के साथ–साथ हम सभी मानव काक लक्ष्य भी एक है। सभी मानव सुखी रहना चाहते हैं और इस लक्ष्य में हम समान है।

सुखी रहते हुए हम मानव अपने सारे कर्त्तव्य ओर दायित्व को पूरा करते हैं और तृप्ति महसूस करते हैं। हम खुश रहते हुए हम एक दूसरे के साथ स्नेह पूर्वक व्यवहार करते हैं। उदहारणार्थ जैसे हमारे माता पिता सुख पूर्वक श्रम करते है और हमारे परिवार की साधना की सारी अव्यशाक्ताओं को पूरा करते हैं। हम भी सुख पूर्वक अपनी पढ़ाई अच्छे से कर पाते है और उनकी सेवा करते है। हमें यह समझ में आता हैं कि हम सभी लोग सुख रहते हुए अपनी सारी आवश्यकताओं को अच्छे तरह से पूरा कर पातें है। जब हम दुखी होते हैं तब हमें काम करने में आनंद नहीं आता और कार्य भी अच्दे से नहीं हो पाता है। यह बात हमें एक दूसरे के साथ व्यवहार में भी दिखती है – दुखी होते हुए हमारा, अपने परिवार जनों और मित्रों के साथ व्यवहार खराब हो जाता है। सुखी रहते हुए ही हमारा एक दूसरे के साथ व्यवहार अच्छा हो पाता है।

सुखी, हम समाधान से होते हैं। समाधान का अर्थ होता है अस्तित्व में संबंध और व्यवस्था को समझना। यह संपूर्ण अस्तित्व, सह अस्तित्व है अर्थात एक व्यवस्था है, जिसमें हर इकाई एक दूसरे के साथ संबंध को पहचानकर, संबंध का निर्वाह करती है। यह समझने को हम समाधान कहते हैं। समाधान पूर्वक, हम भी संबंध का निर्वाह करते हुए, व्यवसािा में भागीदारी करते है। यह हमारे सुखी होने का आधार है। स्वयं में समाधान हम सभी मानव का लक्ष्य है।

समाधान की स्थिति में हम सुखी रहते हैं ओर सुखी रहते हुए हम अपने सारे कार्य और व्यवहार अच्छे तरह से ओर आसानी से पूरा कर पातें हैं। समाधान के साथ जीने से हमें अपनी और अपने पिरवार की आवश्यकताओं को पूरा करने की योग्यता बन पाती है ओर हम अपने

परिवार की सारी साधन की जरूरत को श्रम पूर्वक पूरा कर पाते हैं। इस तरह से हमारा परिवार समृद्ध रहता है। परिवार में समृद्धि हम सभी – मानव का लक्ष्य है।

हमारा परिवार समाज का एक भाग है और हमारे परिवार जैसे कई परिवारों से मिल कर ही हमारा समाज बना है। हमारे समाज में सभी सदस्य समाधान और हर परिवार समृद्धि के साथ जीए ऐसी हम सभी मानव की इच्छा है। मानव में समाधान और परिवार में समृद्धि के साथ–साथ, समाज में मानव संबंध में अखंडता हो, यह हम सभी मानव चाहते है। समाज की इस स्थिति को, जिसमें मानव में समाधान हो, परिवार में समृद्धि हो और मानव समाज अखंड हो – इससे अभय कहते है। समाज में अभय की स्थिति को पाना, हम सभी मानव का लक्ष्य है।

इस पृथ्वी पर ही हमारा घर है, जिसमें हम रहते हैं, खेत है – जिसमें हमारी पैदावार होती है, मैदान ओर जंगल हैं – जहाँ जीव जानवर चरते और रहते हैं, वायुमंडल है जिसमें सभी प्राणी सांस ले रहे हैं, नदियों में जल है जिससे सभी प्राणी अपनी प्यास बुझा रहे हैं। हमारे खेत खलिहान, पृथ्वी के ऋतु चक्र पर निर्भर हैं और हमारी आवश्यकताएं ऋतु चक्र के संतुलित रहने पर अत्यधिक निर्भर है। यह धरती हमारा आश्रय है ओर यह समृद्ध रहे, यह हम सभी मानव के लिए अनिवार्य है। धरती के साथ हम सारे मानव तालमेल पूर्वक जीना चाहते हैं। मानव का समाधान के साथ होना, परिवार का समृद्ध होना, समाज का अखंड होना और मानव का धरती की व्यवस्था में भागीदारी करने को सह अस्तित्व कहते हैं। यह हम सभी मानव का लक्ष्य है।

इस तरह से, हम सभी मानव का लक्ष्य – समाधान, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्व है, और हम सभी इसे अपने जीवन में प्रमाणित करना चाहते है। इन चारों लक्ष्य को मानवीय लक्ष्य भी कहते हैं। इन चारों लक्ष्य की पूर्ति, समझदारी पूर्वक ही होती है। अतः मानवीय लक्ष्य को प्रमाणित करने पर मानव, समझदार या जागृत मानव कहलाता है। हम सभी मानव, एक–दूसरे के साथ संबंधपूर्वक और व्यवस्था पूर्वक ही इस लक्ष्य को पाते है। इस लिए संबंध और व्यवस्था को समझना हम सभी मानव के लिए अनिवार्य है।

अभ्यास व अध्ययन

1. मानव लक्ष्य क्या है?
2. समाधान किसे कहते है?

पाठ–2

समृद्धि

प्रत्येक मनुष्य समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व चाहता है। इसे हम मानव लक्ष्य कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य में मानव लक्ष्य समान है। समाधान, अभय एवं सह–अस्तित्व प्रत्येक मनुष्य के लिये एक समान है। अर्थात सभी मनुष्य के लिए समाधान एक ही जैसा है – यह कभी भी एवं कहीं भी बदलता नहीं है। इसी के साथ छोटे बच्चे से लेकर वृद्ध तक, समाधान एक जैसा होता है। सभी मनुष्य समाधान ही चाहते हैं। समस्या कोई भी नहीं चाहता। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अभय चाहता है, भय कोई भी नहीं चाहता। अभय एवं सह–अस्तित्व भी सभी के लिए एक जैसे होते हैं।

प्रत्येक मनुष्य समृद्धि चाहता है। शिशु, युवा, वृद्ध सभी को समृद्धि की चाहत होती है। समृद्धि प्राप्त करने के तरीके लोगों के लिए अलग–अलग हो सकते हैं जैसे कृषि, पशुपालन, वस्त्र उद्योग, दूरसंचार के उद्योग आदि।

परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही समृद्धि है।

प्रत्येक मनुष्य परिवार में ही जन्म लेता है एवं परिवार में ही जीता है। अतः मनुष्य की आवश्यकता को परिवार में ही पहचाना जा सकता है। अकेले मनुष्य की आवश्यकता को पहचाना जाना संभव नहीं है।

परिवार में जीते हुए मनुष्य की आवश्यकता दो प्रकार की होती है :

1. सामान्य आकांक्षा

2. महत्वाकांक्षा

1. सामान्य आकांक्षा : इसमें भोजन, वस्त्र एवं आवास आते हैं। यह प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य है। भोजन से ही प्रत्येक मनुष्य का पोषण होता है। शरीर संरक्षण के लिए वस्त्र एवं आवास आवश्यक हैं।

2. महत्वाकांक्षा : दूरश्रवण, दूरदर्शन एवं दूरगमन को संयुक्त रूप में महत्वाकांक्षा कहते हैं। इसे दूरसंचार भी कहते हैं।

a. **दूरश्रवण** : दूर की वस्तुओं की ध्वनि को पहचानना दूरश्रवण कहलाता है। सामान्य स्वस्थ मनुष्य अपने आस–पास की ध्वनि को पहचानता है। उससे अधिक दूर की ध्वनि को पहचानने के लिए कुछ यंत्रों की आवश्यकता होती है। इसे ध्वनि विस्तारक यंत्र या लाउड़स्पीकर कहते हैं। दूरभाष या टेलीफोन इस के अंतर्गत आते हैं।

b. **दूरदर्शन** – आँखों की क्षमता से अधिक दूर के दृश्य देखने के लिए कुछ उपकरण या यंत्र की आवश्यकता होती है। इन्हें दूर दर्शन के यंत्र कहते हैं – जैसे दूरबीन – इसके द्वारा हम अनेक दूर की वस्तुओं को पहचानते हैं। चन्द्रमा एवं अन्य आकाशीय ग्रहों को वैज्ञानिक इससे देख कर समझने का प्रसास करते रहे हैं।

आज कल दूर के दृश्यों को कैमरे एवं रिलेसेन्टर या कृत्रिम उपग्रहों के माध्यम से टेलीवीजन या कम्प्यूटर में देख सकते हैं।

c. **दूरगमन** – मनुष्य पैर से आस–पास घूमता ही रहता है। पुराने समय से ही देशाटन की

प्रथा रही है। इसमें लोग दूर–दूर तक सैकड़ों – हजारों किलोमीटर की यात्रा करते थें। इसमें कई वर्ष लगते थे। इससे यह विदित होता है कि दूरगमन मनुष्य की आवश्यकता है। आज–कल तेज़ गति के वाहनों द्वारा हम प्रतिदिन सैकड़ों और हज़ारों किलोमीटर की यात्रा कर सकते हैं। जैसे बस, कार एवं ट्रेन द्वारा प्रतिदिन एक हज़ार किलोमीटर से अधिक दूरी की यात्रा भी कर सकते हैं। वायुयान के द्वारा हम प्रतिदिन दस हज़ार किलोमीटर से अधिक दूरी की यात्रा कर सकते हैं।

इस प्रकार हम अपनी आवश्यकता को पहचान सकते हैं। आवश्यकता को पहचानने के पश्चात हम इन्हें पूरा करने के उपायों का सोचते हैं। वस्तुएँ अनेक होती है परन्तु सभी वस्तुएँ हमारे लिए आवश्यक नहीं होती जैसे हम लोग छत्तीसगढ़ के मैदानी इलाके में रहते हैं – यहाँ पर पानी मे चलने वाले जहाज़ या जलयानों की आवश्यकता नहीं है।

धरती पर जीते हुए मानव की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। हमारे आवश्यकता की कुछ वस्तुएँ धरती में सीधे ही प्राप्त हो जाती हैं। जैसे भोजन के लिए फल। इसे हम सीधा ही खा सकते हैं, परन्तु धान, गेहूँ या दालों को हम सीधा नहीं खा सकते हैं। इन्हें पकाना पड़ता हैं। इसी प्रकार हमारे रहने के स्थान अर्थात मकान बने हुए नहीं रहते, इन्हें बनाना पड़ता है। वस्त्र एवं दूरसंचार के सभी वस्तुओं का निर्माण करना होता है। भोजन के लिए अनुकूल वस्तुओं का समय पर संग्रह करना एवं सुरक्षित रखने का प्रबंध करना पड़ता है। इस प्रकार धरती पर प्राप्त वस्तुओं को श्रम पूर्वक एकत्रित कर हमारे उपयोग के लायक बनाने की आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया को हम उत्पादन कहते हैं।

इस प्रकार हम यह समझे हैं कि हमें अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है एवं उत्पादन द्वारा ही वे वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं। उत्पादन के बिना वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती ।

परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन किया जाता है। उत्पादन द्वारा प्राप्त वस्तुओं का उपयोग किया जाता है। जब उत्पादन द्वारा प्राप्त वस्तुओं का उपयोग किया जाए एवं हमारी सारी आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँ तब इसे हम समृद्धि कहते हैं।

समृद्धि एक भाव है। हमेशा हम अपनी आवश्यकता को पूरा कर रहे हैं – इस स्वीकृति को समृद्धि कहते हैं।

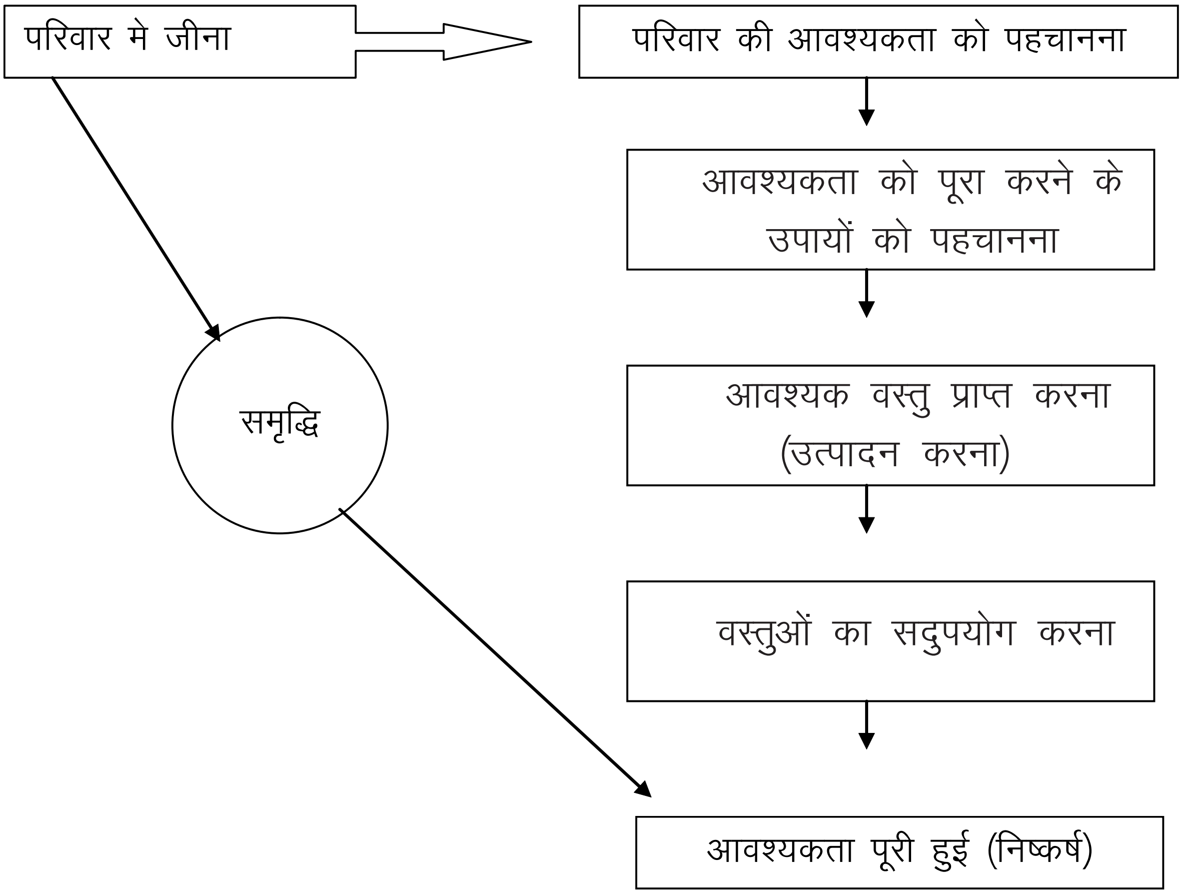

सार रूप में, परिवार में जीते हुए :

1. आवश्यक वस्तुओं की पहचान।
2. वस्तुओं की मात्रा का अनुमान।
3. वस्तुओं को प्राप्त करने की विधि – उत्पादन एवं उसके लिए तकनीकी की पहचान।
4. उत्पादित वस्तुओं द्वारा आवश्यकता पूरी होने का मूल्यांकन।

अभ्यास व अध्ययन

1. समृद्धि का क्या अर्थ है?
2. उत्पादन किसे कहते हैं?

गतिविधियाँ

1. अपने परिवार में आवश्यक वस्तुओं की सूची तैयार कीजिए।
2. अपने परिवार में आवश्यक वस्तुओं की प्राप्त करने के तरीकों की सूची बनाइए।
3. रिक्त स्थान भरिए :

   क. सामान्य आकांक्षा – ....

   ख. महत्वाकांक्षा – ....
4. दूरगमन, दूरश्रवण, दूरदर्शन को विस्तार से समझाइए।

पाठ–3

अस्तित्व सहज व्यवस्था

अस्तित्व का अर्थ है होना।

मानव, पशु–पक्षी, पेड़, पौधे, गृह–गोल, सूर्य, चन्द्रमा, हमारी धरती, यह अस्तित्व की विभिन्न इकाइयाँ हैं। हम इन्हें अलग–अलग इकाइयों की तरह इसलिए पहचानते हैं क्योंकि इन सब इकाइयों का रूप अलग हैं, इनके परस्परता में व्यक्त होने वाले गुण अलग हैं व इन इकाइयों का स्वभाव व धर्म अलग हैं। यह इकाइयाँ क्रियाशील हैं और एक निश्चित प्रकार से व्यक्त होती हैं।

इकाइयों का एक निश्चित आचरण होता है ओर इसी के आधार पर हम विभिन्न इकाइयों के होनेपन को पहचानते हैं।

जैसे – आम के पेड़ में ग्रीष्म ऋतु के शुरुआत में फूल आते हैं और कुछ समय प्श्चात आम का फूल फल में परिवर्तित होता है। यह फल तत्पश्चात परिपक्व होता है और हम इस फल को खाते हैं। ये घटनाएँ एक निश्चित ऋतु, निश्चित समय पर, हर वर्ष होती हैं। यह आम के पेड़ का आचरण हैं और हर वर्ष, हर स्थान पर निश्चित हैं। इसको हम आम के पेड़ का निश्चित आचरण समझते हैं। इकाइयों के निश्चित आचरण को हम व्यवस्था कहते हैं।

इसी प्रकार अन्य पेड़–पौधे, पशु–पक्षी एवं मिट्टी पत्थर आदि; इन सभी का एक निश्चित आचरण है। अर्थात यह इकाइयाँ स्वयं में एक व्यवस्था हैं। इकाइयों के निश्चित आचरण से अन्य इकाइयों के परस्परता में भी ताल–मेल होता है।

इकाइयों के अनंत समूह को हम प्रकृति कहते हैं। जैसे कि हमने पहले समझा है कि प्रकृति में चार अवस्थाएँ हैं :–

1. पदार्थ अवस्था (मिट्टी, धातु, पत्थर, जल, पिंड, गृह–गोल)

2. प्राण अवस्था (पेड़–पौधे, वनस्पति)

3. जीव अवस्था (पशु–पक्षी, जीव)

4. ज्ञान अवस्था (मानव)

प्रकृति में सभी इकाइयाँ निरंतर क्रियाशील हैं। स्वयं में व्यवस्था होने के साथ–साथ प्रकृति की सभी इकाइयाँ अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदार हैं – इन सब में सम्बन्ध हैं। जैसे आम का पेड़ स्वयं में एक व्यवस्था हैं और आम का फल; पशु–पक्षी व मानव के पोषण के लिए उपयोगी है। आम के पेड़ की पत्तियाँ और फल जब धरती पर गिरती हैं तो वे मिट्टी में गल कर मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं। आम का पेड़ इस प्रकार पदार्थ अवस्था (मिट्टी), जीव अवस्था (पशु–पक्षी) व ज्ञान अवस्था के लिए उपयोगी हैं। हम ध्यान से देखें तो हम यह सभी इकाइयों में देख सकते हैं की हर इकाई में निरंतर क्रिया हो रही हैं। निरंतर क्रिया कर इकाई स्वयं में व्यवस्था बनी रहती है और अन्य इकाइयों के पूरक होती है।

अस्तित्व में हमें इकाइयाँ व इकाइयों के बीच बहुत सारा खाली स्थान दिखता है। हर दो इकाइयाँ के बीच खाली स्थान है, उनके भीतर खाली स्थान है व आस–पास भी खाली स्थान है। इस खाली स्थान को हम व्यापक सत्ता कहते हैं। अर्थात अस्तित्व में दो वास्तविकताएँ हैं – इकाईयाँ और व्यापक सत्ता।

अस्तित्व में प्रकृति व्यापक सत्ता में संप क्त है, अथवा प्रत्येक इकाई सत्ता में भीगी है, डूबी है और घिरी है। कोई भी इकाई व्यापक सत्ता के बाहर नहीं हैं और व्यापक सत्ता हर इकाई के आर–पार है। जैसे – रुई के टुकड़े को हम पानी में डालते हैं तो रुई पानी के अन्दर होती है, उसके बाहर नहीं, अर्थात रुई पानी मे डूबी है। रुई के सभी ओर पानी है अर्थात पानी से घिरी है। पानी उसके आर–पार है, इसलिए रुई पानी में भीगी है। रुई का ऐसा कोई कण नहीं जिसमें पानी उसके अन्दर और सभी ओर न हो, अतः रुई पानी में 'संपृक्त' है।

इकाईयाँ अथवा प्रकृति व्यापक सत्ता में इस प्रकार संप क्त हैं। इकाईयाँ और व्यापक अविभाज्य हैं और उनका अस्तित्व साथ–साथ है। अतः इकाईयाँ और व्यापक सत्ता सह–अस्तित्व में हैं।

इससे हम यह भी समझते हैं कि किसी भी इकाई का अस्तित्व अकेले नहीं है। हर इकाई व्यापक सत्ता में संप क्त है व वरस्परता में अन्य इकाइयों के साथ है। इतने बड़े गृह–पृथ्वी – को देखें तो पृथ्वी ठोस, तरल व विरल प्रकार के अनेक इकाइयों से बनी हुई है। साथ ही, धरती की सतह पर एक परत है जिसका हम मिट्टी कहते हैं। इस मिट्टी की परत, अनंत छोटे–छोटे मिट्टी के कणों से बनी हुई है। प्रत्येक कण, मिट्टी के अनंत अणुओं से बना हैं अणु, अनंत परमाणुओं से बना हे और प्रत्येक परमाणु न्यूनतम दो अंशों के मिलने से ही बनता है।

परमाणु अस्तित्व की सबसे मूल इकाई है क्योंकि परमाणु अस्तित्व की सबसे छोटी व्यवस्था है। परमाणु के अंशों के संख्या भेद से परमाणु की विभिन्न प्रजातियाँ बनती हैं। इन विभिन्न प्रजातियों के परमाणु का भी एक निश्चित आचरण होता है। जैसे कार्बन का परमाणु कार्बन का आचरण व्यक्त करता है, लोहे का परमाणु लोके का आचरण व्यक्त करता है। यहीं परमाणु की व्यवस्था है।

सार रूप में, प्रत्येक इकाई निरंतर क्रियाशील है और उसका आचरण निश्चित है। अतः इकाई स्वयं एक व्यवस्था है और अन्य इकाइयों सहित बड़ी व्यवस्था में भागीदार है। साथ ही, अस्तित्व में सभी इकाईयाँ व्यापक सत्ता में संपृक्त हैं। यही सह–अस्तित्व है।

अभ्यास व अध्ययन

1. इकाईयों का आचरण निश्चित है – इसे विस्तार से समझाइए।
2. हर इकाई स्वयं में व्यवस्था हैं और समग्र व्यवस्था में भागीदार है – इसे स्पष्ट कीजिए।
3. प्रकृति की सभी इकाइयों का क्या लक्ष्य है?

4. निम्नलिखित श्रेणियों में उपयुक्त इकाईयों को लिखें।

पदार्थ–अवस्था	प्राण–अवस्था	जीव–अवस्था	ज्ञान–अवस्था

पाठ–4

हमारी धरती एक व्यवस्था

जिस ग्रह पर हम रहते हैं, उसे हम पृथ्वी कहते हैं। हमारी पृथ्वी सौर मंडल का भाग है, जिसके केंद्र में सूर्य है। धरती समेत आठ ग्रह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं। इस परिक्रमा के कारण धरती पर अलग ऋतुएँ होती हैं। साथ ही, पृथ्वी के अपनी धूरी पर घूमने से पृथ्वी/धरती पर दिन और रात होते हैं।

जब हम ग्रह या पृथ्वी के बारे में सोचते हैं, तो उसमें हम क्या–क्या देखते हैं? ठोस ज़मीन, घर, गाँव, शहर, समुद्र, नदी, तालाब, पहाड़, हवा, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, मिट्टी–धातु, मनुष्य – यह सब धरती के ही भाग हैं।

पृथ्वी की संरचना को देखें तो हम इसे तीन अलग भागों में समझ सकते हैं :

1. धरती की सतह – जहाँ मनुष्य व अन्य जीव रहते हैं व वनस्पति होते हैं;
2. सतह के नीचे भूगर्भ – जहाँ खनिज पदार्थ, तेल, कोयला, अन्य वस्तुएँ हैं;
3. सतह के ऊपर धरती का वायुमंडल।

ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि हर इकाई अपने में एक व्यवस्था है और उससे बड़ी व्यवस्था में भागीदार है और धरती के यह तीनों भाग – सतह, भूगर्भ व वायुमंडल अपने में एक व्यवस्था हैं और यह तीनों मिलकर धरती पर प्राण अवस्था, जीव अवस्था व ज्ञान अवस्था के लिए अनुकूलता बनाते हैं। इन सबके सम्मिलित रूप को एक बड़ी व्यवस्था – धरती के रूप में पहचानते हैं।

हम धरती की सतह पर रहते हैं। जहाँ हम चलते हैं, जहाँ हमारे गाँव और नगर बसे हैं, गाड़ियाँ, रेल, पशु, नदी, तालाब; यह सब धरती की सतह का भाग है।

धरती की सतह पर थल और जल दिखते हैं। ठोस ज़मीन जिस पर हम चलते हैं और रहते हैं वो थल है। थल पर हमें मैदान, पहाड़, जंगल, घाटी, मिट्टी, पत्थर आदि दिखते हैं। मनुष्य अधिकतर मैदानों में रहते हैं और अलग भौगोलिक स्थानों पर अलग–अलग जीव और जानवरों की प्रजातियाँ होती हैं। समुद्र, नदी, तालाब धरती की सतह पर पाए जाते हैं ओर ये जल का भाग हैं।

धरती पर अनेक जल के स्रोत हैं। कुछ स्थानों पर तालाब हैं जहाँ बरसात का पानी जमा रहता है। नदियाँ एक ऐसी प्राकृतिक व्यवस्था है जो पिघली हुई बर्फ व वर्षा के पानी को थल से व्यवस्थित रूप में सागर तक ले जाती हैं। सागर व महासागर धरती की सतह का एक बड़ा भाग हैं। महाद्वीपों के बीच हम सागर व महासागर पाते हैं।

धरती की सतह के नीचे का भाग भूगर्भ है जहाँ खनिज, तेल, कोयला व चट्टाने हैं। धरती का भूगर्भ धरती की सतह पर सूर्य से प्राप्त गर्मी को पचाता है। और जो वस्तुएँ प्राण, जीव व ज्ञान अवस्था के लिए ज़रूरी हैं उसे ऊपर सतह पर ले आता है, जैसे लोहा आदि। इन इकाईयों का स्थान भूगर्भ में अलग जगह और गहराईयों पर होना सतह की व्यवस्था के लिए आवश्यक है।

धरती की संरचना का तीसरा भाग है धरती का वायुमंडल। यह वो भाग है जो धरती की सतह के ऊपर है, इस भाग में अनेक विरल पदार्थ हैं। हम साँस वायुमंडल से लेते हैं। वायुमंडल धरती के चारों ओर से एक कवच की तरह हैं। पक्षी व हवाई जहाज़ को हम वायुमंडल में उड़ते हुए देखते हैं। धरती जैसे अपने धूरी पर घूमती है तो उसके साथ–साथ पूरा वायुमंडल भी घूमता है। इसको हम ऐसे देख सकते हैं जैसे हमने एक गेंद हवा में सीधे ऊपर उछाली, तो वह गेंद लगभग वापिस वहीं आ कर गिरेगी। प्राण अवस्था, जीव अवस्था व ज्ञान अवस्था, तीनों अवस्थाओं के लिए आवश्यक वायु धरती के वायुमंडल में उपलब्ध है।

अतः इतनी विशाल धरती पर अनंत इकाईयाँ ठोस, तरल व विरल रूप में – वायुमंडल, सतह और भूगर्भ में फैली हुई हैं। ये एक दूसरे के पूरक हैं। इन सब इकाईयों का क्रम, मात्रा व स्थान निश्चित है। यह निश्चित्ता का प्रयोजन धरती पर मानव व अन्य जीव के लिए अनुकूल वातावरण बनाए रखना है।

अभ्यास व अध्ययन

1. धरती की संरचना के कितने और कौन–कौन से भाग हैं?
2. धरती की सतह पर हमें क्या–क्या दिखता है?
3. धरती के गर्भ में क्या–क्या पाया जाता है?
4. धरती के वायुमंडल में क्या–क्या है?
5. धरती एक बड़ी व्यवस्था कैसे है?

पाठ–5

पदार्थ अवस्था

पृथ्वी पर चारों तरफ हमें पहाड़, रेगिस्तान, मिट्टी, नदी, समुद्र, हवा, पेड़–पौधे, कीड़े–मकौड़े, जानवर, पक्षी, समुद्र में तैरती कई प्रकार के समुद्री जीव–जंतु दिखाई देते हैं। इसके साथ हम मानव भी हैं। इस प्रकार धरती पर चार अवस्थाएँ हैं – पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञान अवस्था।

थोड़ा और गहराई से देखने पर हम पाते हैं कि सबसे ज़्यादा मात्रा पदार्थ अवस्था की है – यानि कि पहाड़, नदी, समुद्र, मिट्टी, हवा, धरती के नीचे पाए जाने वाले खनिज पदार्थ इत्यादि, यह सारे पदार्थ ठोस, तरल और विरल के रूप में पृथ्वी पर असंख्य मात्रा में हैं।

पत्थर ठोस होता है, उसमें भार सहने की क्षमता होती है। पानी तरल होता है और तरल पदार्थ बहता है। दूध, तेल, पानी यह सब तरल पदार्थ हैं। हवा विरल पदार्थ है और वायु के रूप में होती है।

पदार्थ एक बार जैसे क्रिया करता है, वैसे ही हर बार करता है। जैसे कि चिकनी मिट्टी को अगर थोड़ी देर भिगो के रखते हैं तो उसमें चिपकने का गुण आ जाता है। इस गीली, चिकनी मिट्टी को कोई भी आकार दे कर हम बर्तन, दिया, ईंट इत्यादि बनाते हैं। हम जब भी ऐसा करेंगे, चिकनी मिट्टी ऐसे ही चिपकेगी और उसका यह आचरण हर जगह और हर समय ऐसा ही रहेगा। इसको निश्चित आचरण कहते हैं। हर पदार्थ का इस प्रकार से आचरण निश्चित होना, पदार्थ अवस्था में व्यवस्था है।

संगठन–विघटन पदार्थ का स्वभाव है।

संगठन–विघटन अथार्थ पदार्थ का टूटना या जुड़ना। इसी स्वभाव–वश पदार्थ में भौतिक या रासायनिक क्रिया होती है। भौतिक व रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप परिवर्तन होता है। वह क्रिया, जिसमें किसी पदार्थ के भौतिक गुणों में परिवर्तन हो जाता है, उसे भौतिक क्रिया कहते हैं। जैसे एक बर्तन में पानी को उबालें तो पानी की सतह से भाप निकलती दिखाई देगी। यहाँ हम देखते हैं कि पानी भाप में बदल गया। भाप पानी से भिन्न नहीं है सिर्फ उसमें अधिक गर्मी है। ठण्डे करने पर वह पुनः पानी के रूप में आ जाता है।

वह परिवर्तन जिसमें दो पदार्थ के आचरण मिलकर एक नया पदार्थ बनाते हैं, जिसका आचरण पहले के पदार्थों से भिन्न होता है, ऐसी क्रिया को रासायनिक क्रिया कहते हैं। जैसे कि लोहे के टुकड़े को खुले में छोड़ दें, तो लोहे पर भूरे रंग के पदार्थ की परत जम जाती है। यहाँ लोहा और हवा में नमी के योग से, एक नया पदार्थ बन जाता है, जिसको हम ज़ंग कहते हैं। ज़ंग को किसी भी भौतिक तरीके से पुनः लोहे में परिवर्तित हम नहीं कर पाते। ज़ंग का लोहे जैसा आचरण भी नहीं होता है और हम ज़ंग से कुर्सी या रेल की पटरी नहीं बना सकते। अतः पदार्थ में दोनों रासायनिक और भौतिक क्रियाएँ होती हैं।

पदार्थ में जब भौतिक और रासायनिक क्रिया होती है तो उसका विनाश नहीं होता सिर्फ उसका रूप, गुण या आचरण बदलता है। जैसे पानी को उबालने की भौतिक क्रिया से पानी भाप बन जाता है अर्थात् उसका रूप बदल जाता है। वह खत्म नहीं होता। लोहा ज़ंग का रूप ले लेता है लेकिन ख़त्म नहीं होता है। इसलिए पदार्थ के धर्म को अस्तित्व कहते है यानि कि पदार्थ का 'होना' हमेशा बना हुआ है। यह प्रकृति की व्यवस्था है।

हर भौतिक और रासायनिक क्रिया का एक परिणाम होता है जो कि एक पदार्थ के रूप में ही होता है। हर पदार्थ का आचरण निश्चित है, इसलिए हमें यह समझ में आता है कि हर भौतिक व रासायनिक क्रिया का परिणाम भी निश्चित होता है। इसलिए पदार्थ को परिणाम–अनुषंगी व्यवस्था कहते हैं यानि हर पदार्थ अपने परिणाम के आधार पर ही अपना आचरण करता है। जैसे कि तरल रूप में पानी बहता है, भाप के रूप में वह वायु की तरह उड़ता है और ठोस के रूप में वह एक जगह स्थिर रहता है। यह इसका परिणाम वाष्प, पानी और बर्फ के रूप में है और यह इसके बहने, उड़ने या स्थिर रहने के आचरण का कारण है।

पदार्थ अवस्था के इस स्वाभाविक भौतिक और रासायनिक क्रिया से, धरती अपने वातावरण के साथ समृद्ध रहती है और इन क्रियाओं में से कुछ के परिणाम से प्राण अवस्था बनती है। यह प्रकृति में एक व्यवस्था है।

अभ्यास व अध्ययन

1. पदार्थ का आचरण निश्चित होता है – इसे उदाहरण देकर समझाइए।
2. भौतिक क्रिया किसे कहते है? उदाहरण के साथ बताइये।
3. रासायनिक क्रिया किसे कहते हैं? उदाहरण के साथ बताइये।
4. पदार्थ को परिणाम–अनुषंगी व्यवस्था क्यों कहते हैं?

पाठ–6

प्राण अवस्था

हमारे आस–पास कई तरह के पेड़–पौधे हमें देखने को मिलते हैं। नीम, बरगद, अमरुद, इमली के पेड़, हम बहुत आसानी से पहचानते हैं। आम के बगीचे, गर्मी के मौसम में आम से लदे मन को भाते हैं। हम लोग पेड़ों पर चढ़कर खूब धमा–चौकड़ी करते हैं। गर्मी में आम और लीची के फल हम लोग खूब खाते हैं। ठंड में संतरे और अंगूर का मज़ा लेते हैं।

फल के पेड़ों के साथ–साथ फूलों के पौधे भी हमारे चारों तरफ फैले हैं। हमारे घर के पास, रास्ते के किनारे, विद्यालय में, बागों और जंगलों में कई प्रकार के फूल देखने को मिलते हैं। फल और फूल के पेड़ और पौधों के अलावा हमें अनेक प्रकार की सब्ज़ी के पौधे भी अपने चारों तरफ देखने को मिलते हैं। आलू, टमाटर, गोभी, बैंगन, लौकी, तोरी आदि अनेकों सब्ज़ियाँ पौधे और लता के रूप में हमारे घर के बगीचों और हमारे खेतों में होते हैं। अनाज जैसे गेहूं, चावल, दाल, चना, ज्वार आदि फसल के रूप में हमारे गाँव के चारों तरफ पूरे साल बने रहते हैं। पेड़, पौधे, झाड़ी, घास, लता इत्यादि के रूप में ये सारी वनस्पति को हम प्राण अवस्था कहते हैं।

ध्यान देने पर हम देखते हैं कि प्राण अवस्था, पदार्थ अवस्था पर निर्भर है। प्राण अवस्था के पोषण के लिए पदार्थ अवस्था उपयोगी है। प्राण अवस्था के लिए आवश्यक पोषक तत्व पानी, हवा और मिट्टी से प्राप्त हैं। ये पदार्थ अवस्था के भाग हैं।

पेड़ के फूल, पत्ते, डाली, तने जब सूख जाते हैं तो नीचे मिट्टी में गिरते हैं। धीरे–धीरे सूरज की गर्मी, पानी, हवा से मिलकर इन सूखी पत्तियों, डालियों इत्यादि में रासायनिक व भौतिक क्रिया होने से, ये मिट्टी में बदल जाते हैं। मिट्टी में पुनः मिलकर, ये मिट्टी को और उपजाऊ बना

देते हैं। यानि कि यह मिट्टी अब और बीजों को पेड़ और पौधों के रूप में परिवर्तन करने के लिए पौष्टिक हो जाती है। इस प्रकार पेड़–पौधे, अन्य पेड़–पौधों को पैदा होने के लिए सहायक भी होते हैं।

हर पौधा, बीज से ही बनता है। बीज को मिट्टी, पानी, हवा और सूर्य की रौशनी पर्याप्त मात्रा में मिलते ही बीज, छोटे से अंकुर का रूप ले लेता है। फिर यह घास, झाड़ी, पौधा, पेड़ इत्यादि बन जाता है। छोटी से छोटी घास से लेकर, बड़े से बड़ा पेड़ जैसे कि बरगद, बीज से ही बनते हैं। यह प्राण अवस्था में व्यवस्था है।

हर पौधे की एक आयु भी होती है। कुछ पेड़ों की कुछ ही दिन और कुछ पेड़ों की सौ साल से भी अधिक की आयु होती है। आयु पूरी होने के बाद पेड़ या पौधा वापिस मिट्टी में परिवर्तित हो जाता है।

बीज पौधा/पेड़ का रूप लेता है, फिर उसमें फूल आते हैं। यह फूल, फल में बदल जाते हैं और इस फल में बीज होते हैं। प्राण अवस्था की अलग–अलग प्रजातियों में, यह प्रक्रिया, एक या कई बार होती है। इस प्रकार प्राण अवस्था अपनी प्रजातियों को बनाये रखती है। यह प्राण अवस्था में व्यवस्था है।

पेड़, पौधे, लता इत्यादि, बाग़, बगीचे, जंगल के रूप में प्राण अवस्था, जीव–जानवर, पक्षी और हम मानव के लिए बहुत उपयोगी हैं। इससे भोजन के रूप में पोषण मिलता है और इससे प्राप्त लकड़ी, पत्ते, जड़ इत्यादि से मानव व पशु–पक्षी अपने रहने की जगह बनाते हैं। प्राणवस्था के रूप में ये पेड़–पौधे आदि इतने हैं कि हम उनकी गणना भी नहीं कर सकते हैं। अतः यह समूचे जीव–जानवर, पशु–पक्षियों और मानव के भोजन के लिए पर्याप्त है। यह प्रकृति में व्यवस्था है।

अभ्यास व अध्ययन

1. प्राण अवस्था किसे कहते हैं?
2. प्राण अवस्था कौन सी अवस्थाओं पर निर्भर है? कैसे?
3. प्राण अवस्था में व्यवस्था को हम किस तरह देखते हैं?

पाठ–7

जीव–अवस्था

पशु–पक्षी जीवावस्था की इकाई हैं। गाय, बैल, कोयल, कबूतर, बाघ यह सभी इकाईयाँ जीवावस्था का भाग हैं। इनमें हमें विभिन्नता दिखती है अर्थात् पशु–पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ होती हैं। यह विविधता भौगोलिक स्थिति अनुसार हमें पहचान में आती हैं। कुछ जीव जैसे हिरण, शेर, गाय, भैंस, घोड़ा, ऊँट भूमि पर रहते हैं और इन्हें हम भूचर कहते हैं। कुछ जीव पानी में रहते है जैसे मछली, मेंढक, बतख और इन्हें जलचर के नाम से जाना जाता है। कुछ जीव हमें हवा में उड़ते हुए दिखते हैं जैसे तोता, कोयल, कबूतर, कौवा, मैना और यह नभचर कहलाते हैं।

इस तरह हमें विभिन्न भौगोलिक वातावरण में कई प्रकार के पशु–पक्षी दिखते हैं। इनमें से कई पालतू होते हैं और कई जंगली होते हैं। गाय, बकरी, बैल, ऊँट को हम पालते हैं। बाघ, हिरण, नीलगाय, भालू, बंदर जंगल में रहते हैं। पालतू जीवों से हमें दूध, ऊन, गोबर (खाद) प्राप्त होता है और हम उन्हें वाहन के लिए भी उपयोग करते हैं। जंगली जानवर जंगल में रहते हुए वहाँ की व्यवस्था का भाग हैं।

पशु–पक्षियों में पेड़–पौधों की तरह, श्वसन, पुष्टि और वृद्धि क्रिया होती है। साथ ही, जीवावस्था में एक विशेष क्रिया है जिससे वह प्राणावस्था से भिन्न है। जीवावस्था की इकाईयाँ मानव के संकेंत को पहचानती हैं। हम गाय का नाम रखते हैं और उस नाम को पुकारने पर वह उसे पहचानती है और हमारी ओर आती है। इसी तरह हम बकरी चराते हैं तो वह हमारे हाथ और डंडे के इशारे पहचानती है। अतः जीवावस्था में मानने वाली क्रिया भी होती है।

मानना, जीवन की क्रिया है। अतः जीवावस्था शरीर और जीवन का संयुक्त रूप है। जीवावस्था में मानना, पहचानना और निर्वाह करने की क्रियाऐं व्यक्त होती हैं।

जीवों का मूल कार्यक्रम अपने शरीर का स्वस्थ बनाऐ रखना है। इस प्रकार जीवों में जीने की आशा है। शरीर स्वस्थ और सुरक्षित रहेगा तभी वे जीवित रहेंगे, इस आधार पर आहार उनके लिए सबसे आवश्यक वस्तु है। वे भोजन करते हैं और अपने शरीर को स्वस्थ बनाए रखते हैं, यही

उनके जीने की आशा है।

हर जीव का आहार निश्चित है। गाय घास खाती है; बाघ हिरण या अन्य शाकाहरी जानवर खाता है; बकरी घास–फूस–पत्तियाँ खाती है; साँप चूहा खाता है इत्यादि। इन सब का आहार निश्चित है। इनमें से कौन शाकाहारी है और कौन माँसाहारी, यह भी निश्चित है। इनको कितनी मात्रा में आहार की आवश्यकता है, यह भी निश्चित है। कोई भी जानवर, विशेषकर जंगल में, अपनी आवश्यकता से अधिक भोजन नहीं करता है। बाघ हर शाकाहारी जानवर को देखते ही उस पर वार नहीं करता। उसे भूख लगने पर ही वह शिकार करता है। यह निश्चित्ता ही व्यवस्था है।

स्वयं में व्यवस्था होने के आधार पर जीवावस्था वंशानुषंगीय है। जीवावस्था की इकाई का अपने वंश की तरह ही आचरण है। गाय का बच्चा गाय की तरह ही चलता है, खाता है, पीता है; बाघ का बच्चा बाघ की तरह ही दौड़ता है, शिकार करके खाता है, जीभ से पानी चाटता है – चाहे यह बाघ उत्तर भारत में हो या दक्षिण में, चाहे यह बाघ अफ्रीका में हो या अमेरिका में। हर जीव का अपने वंश अनुसार, पीढ़ी दर पीढ़ी, आचरण निश्चित है। यह वंशानुषंगीयता भी एक व्यवस्था है।

स्वयं में व्यवस्था होने से जीवावस्था समग्र व्यवस्था (पदार्थावस्था, प्राणावस्था, ज्ञानावस्था) में भागीदार है। भागीदार होने का तात्पर्य पूरक होने से है। जानवर के मल–मूत्र से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। यह जीवावस्था की पदार्थावस्था के साथ पूरकता है। मिट्टी के उर्वरक होने के साथ–साथ पेड़–पौधे भी पुष्ट होते हैं। यह जीवावस्था की प्राणावस्था के साथ पूरकता है। पदार्थावस्था और प्राणावस्था द्वारा जीवावस्था को हवा, पानी, वनस्पति के रूप में आहार उपलब्ध होता है। अर्थात ये तीनों अवस्थाऐं एक दूसरे के पूरक हैं।

जीवावस्था, मानव के पूरक है। मानव, पशु का कृषि में उपयोग करते हैं। जैसे बैल के द्वारा हल चलाते हैं। साथ ही, पशु मानव का सामान, अनाज ढोने के काम में आते हैं और पशु से मानव को दूध और ऊन अपने शरीर के पोषण और संरक्षण के लिए प्राप्त होता है। इस तरह जीवावस्था ज्ञानावस्था के लिए भी पूरक सिद्ध होती है।

अभ्यास व अध्ययन

1. कौन सी क्रिया जीवावस्था में प्राणावस्था से भिन्न होती है?
2. जीवावस्था में 'मानने' की क्रिया होती है। इस क्रिया को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. जीवावस्था में आचरण निश्चित है। इसे उदाहरण सहित समझाइए।
4. वंशानुषंगीयता को स्पष्ट करें।
5. जीवावस्था, प्राणावस्था, पदार्थावस्था एक दूसरे के पूरक हैं। इसे स्पष्ट कीजिए।

पाठ–8

ज्ञान–अवस्था

हम, मानव, इस समृद्ध पृथ्वी पर रहते हैं और कई प्रकार के पशु–पक्षी, जीव जानवर के साथ, यह पृथ्वी हम सभी का आश्रय है। इस धरती पर हम कई प्रकार की इकाइयों को देखते हैं। अनेक प्रकार के धातु, पत्थर, जल जैसे कई पदार्थ हमारी पृथ्वी पर उपलब्ध है। इसके साथ–साथ कई प्रकार के पेड़ पौधे, डाल, लताएँ, फूल, फल, अनाज और सब्जी भी हमारी पृथ्वी पर बहुतायत में उपलब्ध है। अनेकों पशु–पक्षी और कई प्रकार के कीड़े मकोड़े, जीव और जानवर भी इस धरती पर आश्रित है।

धरती पर इतनी संख्या में इकाइयों को हम कुल मिलाकर चार अवस्था में गणना कर सकते हैं। यह हैं–

1. पदार्थ अवस्था जैसे मिट्टी, पत्थर, धातु, जल, वायु इत्यादि
2. प्राण अवस्था जैसे फूल, पत्ती, पेड़–पौधे, डाल लताएँ इत्यादि
3. जीव अवस्था जैसे जीव जानवर, पशु पक्षी
4. ज्ञान अवस्था – सिर्फ मानव

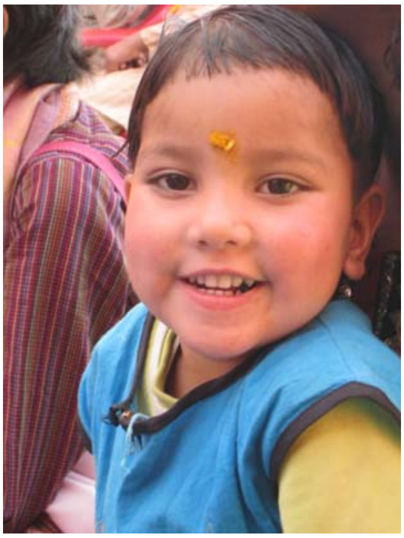

हर अवस्था में अनेक प्रकार की इकाइयाँ हैं, परन्तु यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि ज्ञानावस्था में सिर्फ मानव की गणना होती है, किसी और इकाई की नहीं। हम मानव ही चारों अवस्थाओं को पूर्ण रूप से समझने की क्षमता रखते हैं और अपने समझने की क्षमता वश ही हर इकाई को चार अवस्थाओं में गणना कर इन्हें पहचानते हैं और इनके साथ कार्य कलाप करते हैं यह ज्ञान का प्रमाण है और इसलिए हम ज्ञान अवस्था की इकाई हैं। अन्य अवस्था की इकाई एक दूसरे को भार, आकर्षण, जैसे तथ्यों को

पहचान कर एक दूसरे के साथ कार्य कलाप करती हैं, परंतु एक दूसरे को समझ नहीं सकती हैं। उदाहरण के लिए :

1. मिट्टी, धातु, जल इत्यादि जो की पदार्थ अवस्था की इकाई है, वह एक दूसरे को पहचानती है और जल हमेशा पहचानने की क्षमता वश, ढाल की ओर बहता है। नरम मिट्टी, किसी भारी पत्थर या धातु में भार को पहचानती है ओर उस भारी वस्तु को भूमि की सतह में नीचे सरकाती है।

2. पेड, पौधे जो की प्राण अवस्था की इकाई है, वह पदार्थ अवस्था की उपयोगी इकाइयों को पहचानते है जैसे हर पेड़ पौधा, वायु और जल जैसे उपयोगी पदार्थ को पहचानता है और अपने जड़ और पत्ती के सहारे उनका उपयोग करता है। प्राण अवस्था की इकाई अन्य प्राण अवस्था की इकाई को भी पहचानती है और उनके साथ निर्वाह करती है जैसे, कई पेड़ पर हमें कई प्रकार की छोटे–छोटे कुकुरमुत्ता (mushroom) बरसात के मौसम में मिलते हैं।

3. जीव जानवर में पहचानने के साथ–साथ मानने की क्षमता भी होती है। जैसे कुत्ता, जिसको अपने स्वामी के रूप में स्वीकारता है उसकी इशारों के अनुसार वह क्रियाकलाप करता है, जिसको नहीं स्वीकारता उसके साथ उसका क्रियाकलाप अलग होता है। मानकर, पहचानना और निर्वाह करने की क्षमता वश हम कई इकाई को जीव अवस्था में गणना करते हैं।

4. हम मानव, में जानने (अर्थात समझने) की क्रिया अत्यंत महत्वपूर्ण है। हम किसी भी तथ्य को पहले समझते हैं, समझ कर स्वीकारते हैं और इसके आधार पर अपने इन्द्रियों के सहारे अन्य इकाई को पहचानते है और उनके साथ क्रिया कलाप (निर्वाह) करते हैं। बिना समझे (अर्थात जाने) स्वीकृति में संकल्प नहीं होता, इसलिए समझना और समझ कर स्वीकारना, हम सभी मानव के लिए सहज है। जैसे, जब हम अपने शरीर की व्यवस्था को समझते हैं, तो शरीर की व्यवस्था के अनुसार हम अपना भोजन और विहार को अपने परिवेश में पहचान लेते हैं। जब हम यह नहीं समझते तो हमारा भोजन और रहन–सहन, अभ्यास वश रहता है, जो कि हमारे शरीर के लिए अनुकूल भी हो सकता है, या प्रतिकूल भी। समझने की शक्ति, हम मानव का, ज्ञानावस्था की इकाई होने का प्रमाण है।

संक्षेप में चारों अवस्था में भेद को एक बार पुनः समझते हैं, और इस आधार पर हम ज्ञानावस्था

का मूल्यांकन करते हैं :

1. पदार्थ अवस्था ⟶ पहचानकर निर्वाह करना

2. प्राण अवस्था ⟶ पहचानकर निर्वाह करना

3. जीव अवस्था ⟶ मानकर, पहचानना और निर्वाह करना

4. ज्ञान अवस्था ⟶ समझकर, मानना पहचानना और निर्वाह करना

इस भेद के साथ–साथ, चारां अवस्थाओं में और भी कई बहुत महत्त्वपूर्ण भेद है, जिन्हें हम आगे आने वाले पाठ में पढ़ेंगे परंतु परोक्त भेद से हमने अपना अध्ययन शुरू किया है।

ज्ञानावस्था की इकाई मानव है, जो अपने आस–पास की हर वस्तु को समझकर, उसको स्वीकारने की क्षमता रखता है ओर इस आधार पर उसको पहचानने की और उसके साथ क्रिया कलाप करने के सामर्थ्य के साथ है। हर मानव समझना चाहता है और समझने की क्षमता के साथ है। फिर वह चाहे, इस पृथ्वी पर कहीं भी रहता हो, किसी भी वेशभूषा या भाषा का प्रयोग करता हो, किसी भी जाती या वंश का हो अथवा किसी भी लिंग का हो, हर मानव में हम समझने की चाह और क्षमता, दोनों के होने को हम जांच सकते हैं। हम सभी मानव, समझने की इस क्षमता में सामान है और समझने की क्षमता का उपयोग करना हमारा उत्तर दायित्व है।

तीनों अवस्थाओं से इस पृथ्वी के समृद्ध होने के बाद ही, हम मानव, इस धरती पर प्रकट हुए है और तीनों अवस्थाओं की समृद्धि के फलस्वरूप ही हमारा अस्तित्व है। इसी क्रम के फलस्वरूप, पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था और ज्ञान अवस्था पर हम मानव आश्रित है और इनके सहारे, हमारी कई प्रकार की आवश्यकता पूरी होती है। तीनों अवस्थाओं का समृद्ध बने रहना, इसलिए अत्यंत समत्त्वपूर्ण है।

पाठ–9

मानव संचेतना

हर मानव जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है। जीवन को हम – 'मैं' या 'चैतन्य' की संज्ञा भी देते हैं। शरीर को जड़ वस्तु के रूप में पहचानते हैं। आइए इस पाठ में हम मानव के 'जीवन' या 'चैतन्य' का अध्ययन करते हैं।

हमारी दिनभर की गतिविधियों में हम कुछ स्वतः चलने वाली क्रियाओं को पहचानते हैं। जैसे कि हृदय में धड़कन होना, बाल या नाखून का बढ़ना, भोजन का पचना इत्यादि। यह स्वतः चलने वाली क्रियाएँ हैं। अगर इनकी एक सूची बनाएँ तो बहुत सारी गतिविधियाँ और भी हैं जो स्वतः चल रही हैं, जैसे रक्त बनना और उसका शरीर की नसों में बहना इत्यादि। स्वतः ही चलने वाली क्रियाओं के संयुक्त स्वरूप को हम शरीर कहते हैं। इस क्रिया में कार्यरत अंग–प्रत्यंग भी शरीर के ही भाग हैं। उदाहरण के लिए पाचन क्रिया में कार्यरत अंग जैसे पेट, आँत – यह सब शरीर के हिस्से हैं। अतः शरीर में व्यवस्था अनुसार स्वयं स्फूर्त क्रियाएँ होती हैं।

शरीर रूपी स्वयं स्फूर्त क्रिया के साथ–साथ हम कई ऐसी क्रियाएँ जैसे लोगों के साथ सम्मान पूर्वक व्यवहार करना, अपने परिवार में सेवा करनप इत्यादि भी करते हैं। यह गतिविधियाँ हम इच्छा पूर्वक करते हैं। इच्छा पूर्वक करना अर्थात जानबूझ कर करना। यह गतिविधियाँ स्वयं स्फूर्त नहीं होती है। ऐसी क्रियाओं के पीछे उद्देश्य अर्थात उनको करने में सार्थकता को समझते हैं तो हम सहजता से उसे करते हैं। इसलिए इन्हें हम जानबूझ पूर्वक की गई क्रिया कहते हैं। समझना, इच्छा करना, विचार करना – यह सब जानबूझ पूर्वक की गई क्रिया का आधार है।

हम सभी मानव हर पल इच्छा करते हैं, कुछ सोचते हैं या विचार करते हैं। इच्छा, विचार या आशा करना हमें कोई नहीं सिखाता। यह हमारे लिए सहज है। एक शिशु को भी जब भूख लगती है तब वह रोता है और अपनी आशा को व्यक्त करता है। इच्छा, विचार और आशा क्रिया के सम्मिलित रूप को 'जीवन' कहते हैं। स्वयं में हम जीवन को 'मैं' शब्द से संबोधित करते हैं। जैसे – मैं यह करूँगा, मैं जाऊँगा आदि।

शरीर की विभिन्न क्रियाएँ जैसे साँस लेना, हृदय धड़कना, इत्यादि के सही और ठीक–ठीक कार्य के लिए हमें भौतिक साधन की आवश्यकता होती है – जैसे हवा, पानी, भोजन, वस्त्र इत्यादि। इन साधन के अभाव में शरीर की कार्य–गति में बदलाव आता है, उसमें क्षय होता है – जो हम सबको समझ में आता है। हम अगर बहुत देर तक खाना नहीं खाएँ तो कमज़ोरी का अनुभव होता है, हमारी काम करने की क्षमता कम होने लगती है। इसके विपरीत इच्छा, विचार, आशा क्रिया को करने के लिए हमें कोई भौतिक साधन की आवश्यकता नहीं होती। हमने भोजन किया हो या न किया हो – हमारी इच्छा करने की शक्ति बनी रहती है – उसमें कोई क्षय नहीं होता। हर मानव में हर पल इच्छा, विचार और आशा की क्षमता बनी रहती है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि जीवन क्रिया अक्षय है। यह भौतिक साधन के अभाव में कभी कम नहीं होती। शरीर क्षयशील है और जीवन क्रिया अक्षय है।

अपनी इच्छा पूरी होने पर हम सुखी होते हैं अर्थात 'मैं' सुखी होता हूँ, शरीर नहीं। अंततः सुखी होना जीवन की उपलब्धि है। सही मात्रा में भौतिक साधन उपलब्ध होने से शरीर पुष्ट होता है और उसके कार्य करने की गति बनी रहती है। पुष्ट होना शरीर की उपलब्धि होती है, 'मैं' (जीवन) की नहीं।

आइये शरीर और जीवन में एक और महत्वपूर्ण भेद समझें। शरीर स्वयं में एक भौतिक–रासायनिक वस्तु है और अन्य भौतिक–रासायनिक वस्तु की तरह दूसरी वस्तु को पहचान कर, निर्वाह करता है। जैसे पानी में हाथ डालने से – हाथ गीला हो जाता है। शरीर और पानी का एक निश्चित संबंध है और हर बार पानी के साथ – हाथ एक जैसा गीला हो जाता है। इसी तरह भोजन पचना एक रासायनिक क्रिया है – हमारे पेट में जो रस बनता है वह भोजन को विभिन्न तत्वों में बदल देता है और वह फिर शरीर को पोषक तत्व के रूप में प्राप्त होता है। अगर हम कोई ऐसी वस्तु खा लें जो हमारे लिए सहज भोजन नहीं है, तब शरीर में अव्यवस्था हो जाती है। मूलतः रासायनिक क्रिया का संतुलन बिगड़ जाता है और औषधि के ज़रिये उसको संतुलित करना पड़ता है। इस प्रकार शरीर एक भौतिक और रासायनिक क्रिया का स्वरूप है।

जीवन क्रिया, भौतिक या रासायनिक क्रिया नहीं है। जीवन क्रिया को देखें तो हमें यह समझ में आता है कि हम समझना चाहते हैं, करना चाहते हैं और स्वाद लेना चाहते हैं। जब हम कुछ समझते हैं तो हम में कोई भौतिक या रासायनिक परिवर्तन नहीं होता। जैसे हमें जब यह बात

समझ में आई की पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ घूमती है – तो इसको समझने के बाद भी 'हममें' कोई भौतिक, रासायनिक बदलाव नहीं हुआ। जब हम कुछ कार्य करते हैं तो हमारी इच्छा, विचार, आशा में कोई भौतिक या रासायनिक परिवर्तन नहीं होता। जब हम किसी वस्तु को देखते हैं, कोई शब्द़ सुनते हैं, किसी वस्तु को छूते हैं, कुछ खाते हैं, या कुछ गंध नाक में आती है तब भी 'मैं' या 'जीवन' में कोई भौतिक या रासायनिक बदलाव नहीं होता है। जीवन क्रिया अर्थात इच्छा, विचार और आशा में गुणात्मक बदलाव आता है और हम मानवीय प्रवृत्ति पूर्वक जीने लगते हैं।

सार रूप में, सभी मानव – जीवन और शरीर का सम्मिलित रूप हैं। यह एक संगीतमयता है – एक व्यवस्था है। शरीर और जीवन के यह संगीतमय सम्मिलन को हम सह–अस्तित्व की संज्ञा भी देते हैं। इस प्रकार मानव, शरीर और जीवन के सह–अस्तित्व का ही स्वरूप है।

अभ्यास व अध्ययन

1. मानव में स्वतः चलने वाली क्रियाओं की सूची बनाइए।
2. मानव में जानबूझकर करने वाली क्रियाओं की सूची बनाइए।
3. मानव की किन क्रियाओं के लिए भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है?
4. शरीर और जीवन के कुछ भेद बताइए।
5. हर मानव किस–किसके सह–अस्तित्व से बना है?

पाठ–10

परिवार व्यवस्था

मानव ज्ञानावस्था की मूल इकाई है। मानव जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है, जिसमें शरीर की आवश्यकता उसके पोषण–संरक्षण के लिए है और जीवन की आवश्यकता निरंतर सुख के लिए है। मानव की मूल चाहना (निरंतर सुख) की पूर्ति के लिए मानव लक्ष्य की पूर्ति आवश्यक है। मानव लक्ष्य (समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व) को प्रमाणित करने के लिए सबसे प्रारंभिक और छोटी इकाई परिवार है।

मानव परिवार का एक अंग है। परिवार में मानव स्वयं सुखी रहना चाहता है और परिवार के सुख और समृद्धि में भागीदार होना चाहता है। परिवार में अनेक सदस्य होते हैं – माता–पिता से लेकर दादा–दादी, चाचा–चाची, ताऊ–ताई, बच्चे तक। परिवार एक ऐसा व्यक्ति–समूह है जहाँ सभी साथ रहते हैं, साथ काम करते हैं, एक दूसरे का ध्यान रखते हैं और एक दूसरे के सुख–समृद्धि की ज़िम्मेदारी स्वीकारते हैं।

परिवार प्रथम समूह है जहाँ मानव जीने पर संबंधों को पहचानता है जैसे जन्म से ही शिशु माँ को पहचानता है। माँ शिशु को दूध पिलाती है, उसके शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए भोजन खिलाती है। यह सब करने के पीछे माँ में निहित ममता का भाव है। संतान इस भाव को पहचानती है और इस भाव के साथ ही माँ के संबंध को स्वीकारती है। इसी तरह संतान पिता का, दादा–दादी का संबंध भी पहचानती है। उनके क्रियाकलाप से उनमें वात्सल्य के भाव को पहचानती है। जैसे माता–पिता, दादा–दादी शिशु को चलना सिखाते हैं, बोलना सिखाते हैं, उसकी शिक्षा के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराते हैं, श्रेष्ठ व्यक्तियों से मिलाते हैं, उसके पोषण–संरक्षण का ध्यान रखते हैं।

संबंध और उनमें निहित भाव समझने पर ही जागृत मानव अपने अंदर कृतज्ञता का भाव अनुभव करता है। परिवार में संबंध स्वीकारने पर और कृतज्ञ होने पर, परिवार की ज़िम्मेदारी स्वीकारना स्वाभाविक है। सेवा, इस ज़िम्मेदारी (भागीदारी) का एक अहम् भाग है। परिवार को बनाए रखने के

लिए सेवा अनिवार्य है। सेवा का तात्पर्य है शरीर को स्वस्थ बनाए रखना और बिगड़ने पर ठीक करना। जैसे, खाना बनाना, खाना खिलाना, मालिश करना, बीमार व्यक्ति को सही आहार और औषधि देना। सेवा, जड़ वस्तुओं की होती है। इसलिए शरीर और अन्य भौतिक वस्तु या यंत्र को ठीक से रखना या सुधारना, सेवा का ही भाग है। उदाहरण के लिए – घर की सफाई करना, नल खराब होने पर ठीक करना, बर्तन साफ करना इत्यादि।

छोटी उम्र से ही मानव का ध्यान सेवा की ओर जाता है। वह माता–पिता, दादा–दादी, ताऊ–ताई, नाना–नानी के शरीर के पोषण–संरक्षण के प्रति सजग रहता है। परिवार में सेवा के लिए कोई प्रतिफल की अपेक्षा नहीं होती। बल्कि सेवा; कृतज्ञता, विश्वास, स्नेह, सम्मान जैसे भावों का फल है। दूसरा मेरे लिए सुख–समृद्धि चाहता है, दूसरा मेरे सुखपूर्वक जीने में भागीदार है, दूसरा मेरे जैसा है – इस भाव से समझदार मानव परिवार में सेवा करता है, इसी भाव से वह संबंधों को स्वीकारता है और सहजता से इन भावों का (सौम्यता, सौजन्यता, निष्ठा और सौहार्द से) निर्वाह करता है।

संबंधों का फैलाव परिवार के बाहर भी होता है। माँ का परिवार – मौसा–मौसी; मामा–मामी; मौसा, मामी, चाची का परिवार; उनके माता–पिता, भाई–बहन, मित्र इत्यादि। अन्य परिवार के सदस्यों के मित्रों के परिवार के साथ भी मिलना रहता है, एक दूसरे के घर में आना–जाना रहता है। परिवारों का विशेष रूप से उत्सव में मिलना होता है – जैसे, जन्म दिवस, नामकरण, विद्यारंभ, विवाह–उत्सव इत्यादि।

उत्सव में कई परिवारों के बच्चे एक–दूसरे के मित्र बन जाते हैं। फिर उनका घर पर लगातार आना जाना रहता है। इन मित्रों के भाई–बहन से भी मित्रता होती है और इसी तरह संबंध परिवार के बाहर फैलते ही रहते हैं। इन अन्य परिवारों के समूह को कुटुम्ब कहते हैं। एक कुटुम्ब का दूसरे कुटुम्ब से मिलना सहज है। इस तरह समझदार मानव सभी के साथ संबंध पहचानते हैं।

उदाहरण के लिए हमारे परिवार के कुटुंब में हमारा परिवार, हमारी माँ का परिवार, हमारी चाची का परिवार, हमारी ताई का परिवार, हमारी बुआ का परिवार, हमारे दादा के भाई–बहन का परिवार, हमारे बच्चों के मित्रों का परिवार इत्यादि हैं। हमारे परिवार का संबंध हमारी मामी के परिवार के साथ भी होता है तो स्वतः उनके कुटुंब से भी हमारा संपर्क बन ही जाता है। समय के साथ उनसे मिलना–जुलना बढ़ जाता है और संपर्क संबंध में बदल जाता है। मामी के कुटुंब

में उनका परिवार, उनकी माँ का परिवार, उनके भाई–बहन का परिवार, उनके मित्रों का परिवार शामिल है। इस तरह हमारे संबंधों का फैलाव विशाल है। इससे यह समझ में आता है कि सभी हमारे संबंधी हैं – किसी न किसी कड़ी से हम सभी मानव जुड़े ही हैं।

सबके साथ संबंध पहचानने पर वही भाव (विश्वास, सम्मान) भी हर व्यक्ति के साथ बहते हैं। संबंध समझ में आता है तो मूल्यों का निर्वाह होना स्वाभाविक है। परिवार से लेकर समाज और समाज से लेकर पूरे विश्व तक जागृत मानव संबंध पहचानता है, उनमें सहजता से सभी के साथ अपनी ज़िम्मेदारी स्वीकारता है और भागीदारी तय कर निर्वाह करता है।

अभ्यास व अध्ययन

1. परिवार क्या होता है?
2. ममता का अर्थ क्या है?
3. वात्सल्य का अर्थ क्या है?
4. सेवा क्या है? कैसे होती है?
5. कुटुंब किसे कहते है?
6. हम अपनी भागीदारी कब तय कर पाता हैं।

गतिविधि

प्रत्येक छात्र/छात्रा अपने परिवार में कौन से तरीके से सेवा करते हैं, इस पर चर्चा कीजिए।

पाठ–11

मानव–संबंध

मानव संबंधों में जीना चाहते हैं। यह मानव की मूलभूत आवश्यकता है। संबंधों में जीने से ही तृप्ति का अनुभव होता है। मानव शिशुकाल में माँ से ममता चाहता है, उनसे पोषण की अपेक्षा रखता है; पिता से संरक्षण चाहता है; भाई–बहन से स्नेह चाहता है। यह अपेक्षाएँ स्वभाविक हैं और संबंधों में जीने से इन अपेक्षाओं की पूर्ति होती है। समझदार मानव ही संबंधों में जीता है। अर्थात वह परिवार–समाज में माता–पिता, भाई–बहन, मित्र इत्यादि के साथ संबंध पहचानता है, उनमें अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर निर्वाह करता है और उनमें निरंतर सुखपूर्वक जीता है। उदाहरण के लिए जागृत माता–पिता अपनी संतान के पोषण–संरक्षण की भागीदारी स्वीकारते हैं और उसका निर्वाह करते हैं – यह संबंध में जीने का प्रमाण है।

संबंध में भागीदारी का निर्वाह निहित है। भागीदारी और ज़िम्मेदारी अविभाज्य है। जैसे समझदार भाई अपने छोटे भाई के साथ संबंध पहचानता है और उसके प्रति ज़िम्मेदार होता है। वह उसकी समझ और उसके स्वास्थ्य की आरे ध्यान देता है। उसके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार और कार्य करता है।

अस्तित्व के सह–अस्तित्व पूर्वक होने से संबंध निश्चित हैं और उनमें भागीदारी भी निश्चित है। इन निश्चित संबंधों को जागृत मानव पहचानते हुए इनमें मूल्यों का अनुभव करता है और तृप्त होता है। जैसे समझदार परिवार में माता–पिता अपनी संतान के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखते हैं और ममता और वात्सलय जैसे मूल्यों का निर्वाह करते हैं। संतान स्वयं समझदार होने पर माता–पिता के प्रति अपनी कृतज्ञता एवं श्रद्धा व्यक्त करती है। अर्थात संबंध मूल्य–युक्त हैं। पूरे अस्तित्व में कोई संबंध मूल्य–विहीन होता नहीं।

जागृत मानव के बीच सात प्रकार के निश्चित संबंध हैं:

1. माता–पिता–पुत्र–पुत्री
2. भाई–बहन
3. मित्र–मित्र
4. गुरु–शिष्य
5. साथी–सहयोगी
6. पति–पत्नी
7. व्यवस्था संबंध

यह सभी संबंध अस्तित्व में परस्पर पूरकता (और मूल्यों) को इंगित करते हैं। अर्थात परस्परता का नाम ही संबंध है। परस्परता यानि एक से अधिक का सान्निध्य होना। जागृत मानव इन सात संबंधों में ही परस्परता को प्रमाणित कर तृप्त होते हैं।

मानवीय परंपरा में उपरोक्त सात प्रकार के संबंधों का प्रमाण संभव है। अर्थात ज्ञान की परंपरा सुनिश्चित होने पर जागृत मानव प्रत्येक संबंध में भागीदारी का निर्वाह करता है और मूल्यों का आदान–प्रदान करता है। निर्वाह ही संबंध का पूर्ण रूप है, अतः संबंधों को पहचानना और निर्वाह करना ही मानव के लिए तृप्तिदायक होता है।

संबंध अथवा पूरकता की पहचान जागृत जीवन करता है। संबंध "है", यह समझदार मानव ही पहचानता है। साथ ही, संबंध अथवा भागीदारी का निर्वाह दो जागृत मानव एक दूसरे के साथ करते हैं। अर्थात संबंधों के निर्वाह के लिए जागृत मानव की अथवा जागृत जीवन और स्वस्थ शरीर के संयुक्त रूप की भागीदारी आवश्यक होती है।

समझदार मानव में संबंधों के निर्वाह का तृप्ति बिंदु न्याय है। दो समझदार मानव आपस में संबंध को पहचानते हैं और उनमें निहित मूल्यों का आदान–प्रदान करते हैं। दोनों में संबंध की सही पहचान और सही मूल्यों के आदान–प्रदान से ही वे तृप्त होते हैं और न्याय का अनुभव करते हैं।

अर्थात स्वयं और दूसरे का सही मूल्यांकन करने के पश्चात ही संबंध में न्याय स्थापित होता है।

जागृत मानव के आपस में संबंध के अतिरिक्त, मानव और शेष प्रकृति का भी संबंध होता है। मानव का शेष प्रकृति के साथ संबंध को नैसर्गिक संबंध कहते हैं। अर्थात जागृत मानव शेष प्रकृति पर आवर्तनशील प्रक्रिया से श्रमपूर्वक उत्पादन–कार्य करता है। वह पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था और जीव अवस्था का नियमपूर्वक परिवार और समाज में उपयोग–सदुपयोग करता है और उसके साथ पूरकता के संबंध में भागीदार होता है। यह कार्य मानवीय सभ्यता का घोतक है। समझदार मानव सभी संबंधों में पूरकता–विधि से जीता है अर्थात मानवीय परंपरा, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संस्कृति और मानवीय सभ्यता का धारक–वाहक होता है।

अभ्यास व अध्ययन

1. हमारी/मानव की मूलभूत आवश्यकता क्या है?
2. हम माँ–पिता और भाई–बहन से क्या अपेक्षाएँ रखते हैं?
4. हम अपने से छोटों के प्रति किस तरह पूरकता निभाते हैं।
5. मानव–मानव के बीच कितने प्रकार के संबंध हैं? कौन–कौन से हैं?
6. माता–पिता का पुत्र–पुत्री के प्रति और पुत्र–पुत्री का माता–पिता के प्रति संबंधों के निर्वाह पर विस्तार से लिखिए।
7. ज्ञान की परंपरा परिवार में बनाए रखने के लिए हमारे माता–पिता क्या–क्या करते हैं?

पाठ–12

मानव–मूल्य

मानव संबंधों में जीते हैं और सुखी होते हैं। संबंधों में मूल्य निहित हैं। किसी वस्तु की मौलिकता ही उसका मूल्य है। जैसे पानी की मौलिकता है कि वह प्यास बुझाता है। चावल की मौलिकता है कि वह शरीर को पोषित करता है। इसी तरह मानव की मौलिकता है कि वह स्वयं और दूसरे को सुखी देखना चाहता है। मानव की मौलिकता संबंधों में जीने से स्पष्ट होती है। संबंधों की मौलिकता मूल्यों सहित जीना है। अतः संबंध और मूल्य अविभाज्य हैं। अर्थात वस्तु को उसकी मौलिकता अथवा मूल्य से अलग नहीं किया जा सकता है।

मूल्यों का सुख एक वास्तविकता है और मानव इसी के साथ निरंतर जीना चाहते हैं। मूल्यों का निर्वाह दूसरी इकाई के साथ संबंध पहचानने पर होता है। जागृत मानव के संबंधों में 30 प्रकार के मूल्य होते हैं। जागृत मानव का वस्तु के साथ संबंध पहचानने पर 2 वस्तु मूल्यों का अनुभव होता है। जागृत मानव का जागृत मानव के साथ संबंध पहचानने पर 18 व्यवहार मूल्यों का निर्वाह होता है। जागृत मानव का अपने से बड़ी व्यवस्था के साथ भागीदारी पहचानने से 6 मानव मूल्यों का अनुभव होता है। जागृत मानव का स्वयं जीवन को समझना और उसका अस्तित्व के साथ सह–अस्तित्व का संबंध पहचानने से 4 जीवन मूल्यों का अनुभव होता है। समझदार मानव ही जागृत मानव कहलाता है।

समझदार मानव सभी के साथ संबंध स्वीकारता है और स्वयं में मूल्यों में अनुभूत होता है।

जागृत मानव भौतिक वस्तुओं के साथ अपना संबंध पहचानता है और आवश्यकता अनुसार समय–समय पर उनका दूसरों के साथ आदान–प्रदान करता है। जैसे गुड़, घी, गेहूँ, घोड़ा–गाड़ी, अन्य यंत्रों का आदान–प्रदान मानव

कुटुंब, गाँव, नगर इत्यादि में करते हैं। जिन वस्तुओं का मानव अपने परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन करता है, उनको दूसरों के साथ बाँटना या विनिमय करना उसके लिए स्वाभाविक है। वस्तु के उत्पादन और आदान–प्रदान के लिए वस्तु की मौलिकता पहचानना अनिवार्य है। वस्तु मानव के लिए किस अर्थ में उपयोगी है, यह वस्तु की मौलिकता की पहचान से, जागृत मानव को स्पष्ट होता है।

हर वस्तु में 2 मूल्य समाये हैं – एक उपयोगिता मूल्य और एक कला मूल्य। उपयोगिता मूल्य, वस्तु का मानव के लिए प्रयोजन परिभाषित करता है। कला मूल्य वस्तु को मानव के लिए उपयोगिता सहित सुविधाजनक बनाने के अर्थ में होता है। जैसे कलम का प्रयोजन लिखना है। यह इसका उपयोगिता मूल्य है। कलम में ढक्कन लगाना ताकि उसकी स्याही सूखे न और वह हमारे कपड़े में न लगे, यह उसका कला मूल्य है।

इसी तरह समझदार मानव दूसरे समझदार मानव के साथ संबंध पहचानता है तो उनके बीच जो घटित होता है उसे व्यवहार कहते हैं। जागृत मानव के व्यवहार करने पर वे दोनों मूल्यों का अनुभव करते हैं। इन मूल्यों को व्यवहार मूल्य कहते हैं।

जागृत मानव व्यवहार करते समय 18 व्यवहार मूल्यों का अनुभव करता है – 9 स्थापित मूल्य और 9 शिष्ट मूल्य।

स्थापित मूल्य, वह मूल्य हैं जो व्यवहार करते समय जागृत मानव में स्थित (अनुभव) होते हैं।

शिष्ट मूल्य, वह मूल्य हैं जो दूसरे के साथ व्यवहार में व्यक्त होते हैं। जैसे जागृत मानव में एक–दूसरे के प्रति विश्वास स्थापित होता है तो वे आपस में सौजन्यतापूर्वक व्यवहार करते हैं। क्रमशः स्थापित व शिष्ट मूल्य हैं:

स्थापित मूल्य	**शिष्ट मूल्य**
1. विश्वास	1. सौजन्यता
2. सम्मान	2. सौहाद्रता
3. स्नेह	3. निष्ठा

4. ममता	4. उदारता
5. वात्सल्य	5. सहजता
6. श्रद्धा	6. पूज्यता
7. गौरव	7. सरलता
8. कृतज्ञता	8. सौम्यता
9. प्रेम	9. अनन्यता

सभी मानव संबंधों में इन मूल्यों की पूर्ति की अपेक्षा करते हैं। इनकी पूर्ति जागृति सहित ही संभव होती है। जागृति के क्रम में मानव में इन मूल्यों का भास, अभास होता है, परन्तु इन मूल्यों को स्वयं (जीवन) में निरंतर अनुभव नहीं कर पाते हैं। मूल्य में निरंतर जीना ही हमें स्वीकृत है। इनमें हमें सामयिकता स्वीकार्य नहीं है। समझदार होने से ही मूल्यों (भाव) की स्वयं (जीवन) में निरंतरता होती है।

मानव के बीच संबंध निश्चित हैं, अतः संबंध में यह 18 व्यवहार मूल्य भी निश्चित हैं। समझदार मानव संबंध स्वीकारते हैं अर्थात उनमें निहित अपेक्षाओं को पहचानते हैं। अपेक्षाओं की समझ होने से स्वयं की संबंध में भागीदारी भी स्पष्ट होती है। इस स्पष्टता के साथ जीने से जागृत मानव एक दूसरे से व्यवहार में अपेक्षित मूल्यों की पूर्ति कर तृप्त होते हैं। इस स्थिति की न्याय संज्ञा है। सभी मानव भी न्याय चाहते हैं और उसकी अपेक्षा में ही कार्य–व्यवहार करते रहते हैं। समझदारी के अभाव में वे न्याय का अनुभव नहीं कर पातें परन्तु उनमें न्याय की अपेक्षा निरंतर बनी रहती है।

शिशु जन्म से न्याय चाहता है, उसे अन्याय स्वीकार्य नहीं होता है, परन्तु न्याय क्या है और उसे कैसे पाया जाये, वह उसे समझ में नहीं आता है। यह अस्पष्टता उसके द्वन्द और पीड़ा का कारण बन जाती है। इसी कारणवश वह स्वयं दुखी होता है और आस–पास भी दुःख फैलाता है। न्याय समझने पर न्यायपूर्वक ही जीया जाता है और कोई दूसरा विकल्प होता नहीं है।

शिशु अपने पिता के साथ संबंध पहचानता है अतः उनसे अपने शरीर के संरक्षण और विचारों के पोषण की अपेक्षा रखता है। साथ ही, पिता अपनी संतान से न्यूनतम मानवीय व्यवहार की

अपेक्षा रखता है। संतान और पिता के समझदार होने के पश्चात ही दोनों की अपेक्षाओं की सही पहचान होती है, उनकी व्यवहार मूल्यों के निर्वाह से पूर्ति होती है और दोनों के बीच न्याय स्थापित होता है। यह भाव स्थापित होने के पश्चात, इन दोनों के बीच न्याय निरंतर बना रहता है।

पिता के समझदार होने से वह शरीर के संरक्षण के लिए सही आहार उपलब्ध कराते हैं, अधिक ठंड और गर्मी से बचने के लिए कपड़े और घर उपलब्ध कराते हैं और शिशु की समझदारी और संतुष्टि के लिए उसकी शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराते हैं। संतान पिता के प्रति कृतज्ञ होती है और ईमानदारी से स्वयं को, प्रकृति को, अस्तित्व को और उनमें अंर्तसंबंध को समझने का प्रयास करती है। सब समझने पर वह समाधानित होती है और सबके साथ निरंतर विश्वास और सम्मानपूर्वक जी पाती है। अर्थात संतान मानवीयता में जीती है।

संबंध को पहचानना, स्वीकारना, समझना और उसमें हर क्षण सुखपूर्वक जीने का तात्पर्य है कि स्वयं और दूसरे की मौलिकता को पहचानना। मौलिकता अर्थात वस्तु में निश्चित मूल्य–सम्पन्नता। मूल्य यानि वस्तु का अस्तित्व में प्रयोजन। जागृत मानव वस्तु का मूल्य पहचानते हैं और उसके साथ अपनी भागीदारी समझते हैं। मूल्य पहचानने वाली इकाई मानव ही है और मूल्य पहचानने पर ही मानव उसके साथ सही से निर्वाह कर पाते हैं। जैसे पानी का मूल्य समझ में आता है तभी उसे अपनी प्यास बुझाने के लिए प्रयोग करते हैं।

इसी तरह मानव की मौलिकता सुखी होकर न्यायपूर्वक संबंधों में जीना और दूसरों के लिए न्याय (अथवा समझ) उपलब्ध करना है। जागृत मानव अजागृत मानव की पात्रता और योग्यता अनुसार उनकी समझ के लिए तन, मन, धन अर्पित करता है। जागृत मानव अपनी मौलिकता पहचानता है अर्थात दूसरों के सुख, समृद्धि में भागीदार होता है। संबंधों में जीना, भागीदारी का निर्वाह करना और तृप्त होना, हर जागृत और अजागृत मानव (अथवा सभी मानव) की आवश्यकता है।

मानव की मौलिकता उपरोक्त अनुसार धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा और करुणा है। इन्हें मानव मूल्य कहते हैं। मानव मूल्य मानव की मौलिकता अथवा मानव के स्वभाव को इंगित करते हैं। इन 6 मानव मूल्य सहित जागृत मानव परस्परता में जीता है और अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था को स्थापित करने के लिए प्रयासरत रहता है। यही मानव के सुख का फैलाव और उसकी अभिव्यक्ति है। समाधानित (अथवा जागृत) मानव स्वयं में व्यवस्था है और इसी आधार पर

अपने से बड़ी व्यवस्था जैसे परिवार, समाज इत्यादि में भागीदार होता है।

जागृत मानव स्वयं व्यवस्था में है अर्थात वह स्वयं (जीवन) में सुख, शांति, संतोष और आनंद को अनुभव करता है। इस अनुभूति सहित समग्र व्यवस्था में सुखपूर्वक भागीदार होता है और अपने कार्य और व्यवहार में सफल होता है। जागृत मानव सुखी होता है तभी दूसरों में सुख बाँट पाता है और संबंधों में न्यायपूर्वक जीता है। सुख, शांति, संतोष और आनंद मानव के जीवन की मौलिकता है। यह 4, मानव के जीवन मूल्य हैं।

अभ्यास व अध्ययन

1. मूल्य किसे कहते हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
2. मूल्य कितने प्रकार के हैं? प्रत्येक प्रकार के मूल्य को विस्तार रूप में बताइए।
3. स्थापित मूल्य किसे कहते है? स्थापित मूल्यों के नाम बताइए।
4. शिष्ट मूल्य किसे कहते है? शिष्ट मूल्यों के नाम बनाइए।
5. न्याय का क्या अर्थ है? न्याय की पूर्ति कैसे होती है?

गतिविधि

घर और विद्यालय में जिन वस्तुओं का उपयोग होता है, छात्र/छात्रा उनकी सूची बनाए और उनमें उपयोगिकता और कला मूल्य को स्पष्ट करें।

पाठ–13

सामाजिक पूरकता

मानव परिवार और समाज दोनों का भाग है। मानव, परिवार और समाज में अनेक प्रकार के संबंध में जीता है। परिवार में वह माता, पिता, भाई, बहन, दादा, दादी के संबंधो में जीता है। तथा समाज में वह अपने मित्रों, गुरूजनों और उनके परिवारों के साथ जीता है। परिवार, समाज की सबसे छोटी इकाई है। कुछ परिवारों के समूह को टोला या मुहल्ला कहते हैं और कई टोला या मुहल्ला के समूह को गाँव कहते हैं। सभी गाँव और सभी परिवारों के समूह को समाज कहते हैं। इन सभी स्तरों में मानव संबंधों में जीता है। मानव के मित्र–संबंध उसके परिवार के संबंधी भी हैं। एवं मानव के परिवार के अन्य संबंधी उसके भी संबंधी हैं। अर्थात मानव और उसके संबंधी एक ही हैं।

मानव अपने माता, पिता, भाई, बहन, चाचा, ताऊ, ताई, दादा, दादी के साथ संबंध पहचानता है। मानव के संबंध माँ के परिवार के साथ भी हैं जैसे नाना, नानी, मामा, मामी, मौसा, मौसी। साथ ही, मौसा–मौसी के परिवार और मामा–मामी के परिवार के साथ भी उसके संबंध हैं। ये परिवारों का समूह एक कुटुंब है। मानव के पारिवारिक–कुटुम्ब के बाहर भी अनेक संबंधी है। जैसे उसके माता–पिता के मित्र हैं। उनके मित्र परिवार–सहित घर आते हैं। घर पर परिवार के सभी सदस्यों का उनसे मिलना होता हैं, बातचीत होती है और बच्चों का आपस में खेलना होता है। इस तरह दोनों परिवारों में मित्रता होती है।

मानव के मुहल्ले और विद्यालय में भी मित्र हैं। इनके साथ भी वह समय बिताता है। वे एक दूसरे के घर आते–जाते रहते हैं। उनके भाई और बहन के बीच भी मित्रता होती है। मानव के

माता–पिता उसके मित्रों के साथ बैठते हैं, उन्हें खाना खिलाते हैं। उनसे उनकी शिक्षा के बारे में चर्चा करते हैं, उनके परिवार का हाल–चाल पूछते हैं। सभी के माता–पिता भी एक दूसरे के मित्र हैं। एक दूसरे के साथ विद्यालय में मिलते हैं, घर पर मिलते हैं। मुहल्ले और गाँव से संबंधित सभाओं में मिलते हैं। यह परिवार–मानव का मित्र–कुटुम्ब है।

शिशु एवं किशोर शिक्षा के लिये विद्यालय जाते हैं। मानवीय परम्परा में मानव जागृति के लिये शिक्षा प्राप्त करता है। मानव जागृत गुरू से ज्ञान प्राप्त करता है। उनके साथ अधिक समय बिताता है। गुरूजन के बच्चे भी उसी विद्यालय में पढ़ते हैं। उनसे भी मित्रता होती है। अतः शिष्य का गुरूजन के घर भी जाना होता है। उनके परिवार से जान–पहचान होती है। उनसे विविध मुद्दों पर चर्चा होती है। इस तरह गुरू के परिवार से भी मित्रता होती है। उसके माता–पिता भी गुरू से मिलते हैं और उसकी शिक्षा के बारे में गुरू का मूल्यांकन सुनते हैं और अपनी राय और अपना सहयोग देते हैं। जागृत माता–पिता और गुरू मिल कर अपना तन, मन, धन शिशु या मानव के विकास के लिये अर्पित करतें हैं। यह उनकी उदारता है। गुरू–जन और उनके परिवार के साथ संबंध भी मानव का एक कुटुम्ब है।

मानवीय संस्कृति में मानव के पारिवारिक–कुटुम्ब और अन्य कुटुम्ब एक साथ उत्सवों और अन्य सामाजिक कार्यक्रमों जैसे शिक्षारम्भ, विवाह, नामकरण,जन्म दिवस में मिलतें हैं। इस तरह मानव के पारिवारिक–कुटुम्ब जैसे मामा–मामी, मौसा–मौसी के परिवार भी मानव के अन्य–कुटुम्ब जैसे – मित्रों और गुरू–जनों से मिलते हैं। मानव का परिवार भी अपने मित्र, गुरू–जनों के कुटुम्ब से मिलता हैं। इस प्रकार मानव समाज में सभी के साथ जुड़ा है। जागृत मानव सभी के साथ संबंध पहचानता है और मानवीयतापूर्ण व्यवहार कर संतुष्ट होता है।

संतुष्ट होना मानव की आवश्यकता है। अजागृत मानव समझ के अभाव में संबंधों में पूरकता पहचान नहीं पाता और संतुष्टिपूर्वक जी नहीं पाता है। अपितु, जागृत मानव जिसको मिलता है, जिसके साथ जीता है, उन सभी के साथ पूरकता का अनुभव करता है और इसीलिए संतुष्ट होता है। जागृत मानव संबंधों में पूरक है और समाज को अखंडता के रूप में पहचानता है। अखंड समाज में जागृत मानव एक दूसरे के साथ समझते–समझाते हैं, सीखते–सीखाते हैं और तृप्त होते हैं। इस आधार पर मानव और समाज एक–दूसरे के लिए पूरक हैं। जागृत मानव अखंड समाज में संबंधियों के साथ अपनी भागीदारी पहचानता है और निर्वाह करता है। यह उसका कर्त्तव्य है।

समझने–समझाने–जीने में मानव तृप्त होता है, सीखने–सीखाने–करने में मानव के शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

मानवीय व्यवस्था में गुरु–शिष्य के संबंध में ज्ञान की अपेक्षा की पूर्ति होती है। साथ ही, भाई–बहन संबंध में दोनों शरीर के आहार, आवास, अलंकार की आवश्यकताओं के लिए परिवार में उत्पादन करते हैं। अपने परिवार की सभी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जागृत परिवार गाँव के अन्य परिवारों के साथ विनिमय करता है। सभी आवश्यक वस्तुओं का हर एक परिवार में उत्पादन करना संभव नहीं है। इसलिए समाज में वस्तुओं का आदान–प्रदान स्वाभाविक है। किस वस्तु की कब और कितनी मात्रा में आवश्यकता है, यह हर परिवार सुनिश्चित करके व्यवस्थागत तरीके से गाँव के अंतर्गत या गाँव–गाँव के बीच में आदान–प्रदान करता है।

एक परिवार अपनी आवश्यकता से अधिक कुछ वस्तुओं का उत्पादन करता है जैसे चावल, गेहूं, सरसों इत्यादि। अपनी आवश्यकता अनुसार उन वस्तुओं का उपयोग करता है और बाकि को अपने कुटुबं, मुहल्ला, गाँव में अन्य परिवारों मं देता है और उन परिवारों से अपनी आवश्यकता के लिए दूसरी वस्तुएँ लेता है। इसी तरह दूरगमन, दूरभवन, दूरदर्शन के लिए यंत्रों जैसे फोन, सड़क, गाड़ी, रेडियो का बनना और फिर विनिमय होना अनेक गाँवों व नगरों के बीच होता है। गाँव–गाँव एवं नगरों में मानव अथवा परिवार की अलग निपुणताएँ, भौगोलिक स्थिति और पर्यावरण के आधार पर यह तय होता है कि कौन किस यंत्र का उत्पादन और विनिमय करेगा। जैसे कोई परिवार कृषि से संबंधित औज़ार बनाता है और वह परिवार इन औज़ार को अन्य गाँवों के साथ विनिमय करता है।

आवश्यकता से अधिक वस्तुओं के कोष और विनिमय के लिए कोषघर होते हैं। विनिमय के लिए गाँव एवं नगर के अंतर्गत्त व्यवस्था है और उनके बीच व्यवस्था है। इस प्रक्रिया के लिए गाँव में विनिमय की समिति भी है। इस समिति में प्रत्येक जागृत परिवार का एक प्रतिनिधि भी भागीदार है। इस तरह गाँव से लेकर पूरे समाज में व्यवस्थागत कार्यों के लिए अलग–अलग समितियाँ हैं – विनिमय कोष, न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य, शिक्षा–संस्कार और स्वास्थ्य–संयम समिति। यही अखंड समाज की सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप है। ग्राम की हर समिति में जागृत परिवार का प्रतिनिधि है। अनेक ग्रामों के बीच की समितियों में भी प्रत्येक ग्राम का प्रतिनिधि है। इस प्रकार जागृत मानव ग्राम से लेकर पूरे समाज तक की व्यवस्था में भागीदार है।

विनिमय के इलावा जागृत मानव समाज में अन्य कार्यक्रमों के लिए भी मिलते हैं। जैसे दीक्षा–संस्कार पर सब मिलते हैं। उस दिन शिष्य अपने समझदार होने की घोषणा करता है, शिक्षा की सार्थकता को बताता है, आगे के कार्यक्रम के लिए समाज में बड़ों से सलाह लेता है। बड़े उसको मार्गदर्शन देकर प्रोत्साहित करते हैं। इन कार्यक्रमों में परिवार के सदस्य, गुरु–जन, मित्र भागीदार होते हैं।

इन अनेक प्रकार से हम मानव समाज से जुड़े हैं। व्यवहारिक रूप से संबंधों में और व्यवस्था के रूप में शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, उत्पादन और विनिमय के स्तर पर जुड़े हैं। इसलिए समाज हमारे लिए पूरक है और हम समाज जैसी बड़ी इकाई में भागीदार हैं। मानव, परिवार, गाँव और समाज अविभाज्य हैं।

अभ्यास व अध्ययन

1. मेरे माता–पिता ओर गुरु–जन मेरी शिक्षा के लिए किस तरह काम करते है?
2. हम पूरे समाज की व्यवस्था में किस तरह भागीदार है?
3. कई गाँवों में आपस में होने वाले विनिमय को विस्तार से लिखिए।
4. समाज हमारे लिए किस तरह पूरक है?

पाठ–14

उत्सव

हम सभी परिवार में रहते हैं। परिवार मे रहकर समाज के कार्यों में भागीदारी करते हैं। ऐसे मे अनेक अवसरों पर हम लोग अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करते हैं। प्रसन्नता को व्यक्त करना उत्सव कहलाता है। उत्सव मानव समाज में अनिवार्य भाग है। उत्सव मनाने का तरीका भिन्न–भिन्न भू–भागों में भिन्न होता है – परन्तु उत्सव मनाने का उद्देश्य एक ही होता है।

उत्सव में प्रसन्नता को व्यक्त किया जाता है। प्रसन्नता को व्यक्त करना तभी सफल माना जाता है जब हम अन्य लोगों को भी प्रसन्न कर सकें। एक व्यक्ति यदि प्रसन्नता को व्यक्त करे एवं कुछ लोग पीड़ित हो जाएँ तो यह प्रसन्नता को व्यक्त करना नहीं कहलाता है। हमारे कार्य–कलाप एवं व्यवहार से एक भी व्यक्ति दुःखी या पीड़ित होता है तो यह प्रसन्नता को व्यक्त करना नहीं कहलता है। जब भी प्रसन्न होते हैं, तब अनेक लोगों को या सभी लोगों को प्रसन्नता होती है।

हम विद्यालय में अपने सहपाठियों को अपने अध्यापकों को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं। हर बार हम एक ही प्रकार से प्रसन्न करते हैं क्या ? इसका उत्तर यह है कि कई बार हम एक ही प्रकार से एवं कई बार अलग–अलग ढंग से प्रसन्नता को व्यक्त करते हैं। इन सबमें विविधता होती है।

समाज में अनेक प्रकार के उत्सव मनाए जाते हैं। इन सबका प्रधान उद्देश्य है कि वे सभी साथ–साथ मिलकर प्रसन्नता को व्यक्त करें। इसी के साथ शिशु एवं युवा अनुकरण एवं अनुसरण पूर्वक इन्हें व्यक्त करने के तरीके सीखते हैं। प्रौढ़ एवं वृद्ध व्यक्तियों के आचरण का अनुसरण एवं अनुकरण किया जाता है। कई उत्सव दिन में मनाए जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में उत्सव रात्रि में मनाएं जाते हैं। यह अनुकूलता की दृष्टि से किया जाता है।

उत्सव के उद्देश्य एवं मनाने के तरीके को सम्मिलित रूप में संस्कृति कहते हैं। सभी मनुष्य में समानता को समझने एवं साथ–साथ जीने का अवसर उत्सव कहलाता है। उत्सव में शिशुकाल

से ही अखण्ड मानव समाज का अंग होने की मान्यता एवं समझ विकसित होती है, इसे संस्कार कहते हैं। मानव समाज में प्रधानतः पाँच उत्सव होते हैं।

1. जन्म–उत्सव
2. नामकरण उत्सव
3. जन्मदिन उत्सव
4. शिक्षा संस्कार उत्सव
5. विवाह संस्कार उत्सव

1 **जन्मोत्सव** : किसी शिशु के जन्म होने पर यह उत्सव मनाया जाता है। यह परिवार मे मनाए जाने वाला उत्सव है। इसमे शिशु के माता–पिता एवं सम्बंधी एकत्रित होकर शिशु के उत्तम स्वास्थ्य एवं समझदार होने की कामना करते हैं।

2. **नामकरण उत्सव** : प्रत्येक मानव सम्बोधन के लिए नाम अनिवार्य है। इस उत्सव मे सार्थक नाम का चयन किया जाता है। यह परिवार में मनाया जाने वाला उत्सव है।

3. **जन्म दिवसोत्सव** : यह शिशु काल से वृद्धावस्था तक मनाए जाने वाला उत्सव है। इसमे शिशु अपने द्वारा किए गए अच्छे कार्यो का स्मरण एवं भविष्य मे किए जाने वाले श्रेष्ठ आचरण एवं कार्यो का संकल्प व्यक्त करते हैं। युवा, प्रोढ़ एवं वृद्ध व्यक्ति उसमे सफल होने का आशीष देते हैं।

युवा प्रोढ़ एंव वृद्ध व्यक्ति प्रमाणित श्रेष्ठ आचरण को व्यक्त करते हैं, अपना मूल्यांकन प्रस्तुत करते हैं।

यह परिवार एवं समाज में मनाया जाने वाला उत्सव है।

4. **शिक्षा संस्कार उत्सव** : यह विद्यालय एवं महाविद्यालय में मनाए जाने वाला उत्सव है। इसमे प्रारंभ मे श्रेष्ठ आचरण करने मे समर्थ होने एवं समझदार होने की कामना की जाती है। अध्यापक इसे पूर्ण होने एवं आश्वासन एवं आशीष देते हैं।

शिक्षा की पूर्णता पर पारंगत होने का सत्यापन किया जाता है।

5. **विवाह संस्कार उत्सव** : इसमे युवा स्त्री एवं पुरूष मे परस्पर पति–पत्नी संबंध की पहचान एवं घोषणा होती है। स्वस्थ एवं समझदार युवा पुरूष एवं स्त्री अपने अभिवावकों एवं समाज के गणमान्य व्यक्तियों के सम्मुख पति–पत्नी संबंध में साथ–साथ रहने का संकल्प करते हैं। किसी परिवार में साथ–साथ रहकर जीने की संकल्प करते हैं। इस उत्सव में कई परिवार सम्मित होते हैं एवं नव दम्पति को श्रेष्ठ आचरण सहित जीने का आशीष देते हैं।

सभी उत्सव में हमें साथ–साथ जीने की प्रेरणा मिलती है। हमसे पूर्व पीढ़ी के व्यक्तियों के साथ जीने का शुभ अवसर मिलता है एवं उनके श्रेष्ठ आचरण, विचारों को देखने–समझने एवं अनुकरण का अवसर मिलता है। ऐसा करने के लिए उनका स्नेह, आशीष एवं उत्साह वर्धन प्रेरणादायी होता है।

अभ्यास व अध्ययन

1. उत्सव किसे कहते हैं?
2. उत्सव क्यों मनाया जाता है?
3. संस्कृति का क्या अर्थ है?
4. मानव समाज में प्रधानतः कितने उत्सव होते हैं? कौन से?
5. जन्म दिवसोत्सव एवं शिक्षा संस्कार उत्सव को विस्तार से लिखिए।

गतिविधि

(शिक्षक के लिए) अपनी कक्षा के छात्र–छात्राओं के जन्म दिवस की सूची बनाए। एक माह में जितने बच्चों का जन्मदिन होता है, उनको एकत्रित कर माह के किसी दिन उन बच्चों का जन्मदिवस कक्षा में मनाए। इसमें छात्र/छात्राएँ पिछले वर्ष किए गए अच्छे कार्यों का स्मरण करें तथा भविष्य में किए जाने वाले श्रेष्ठ आचरण एवं कार्यों का संकल्प व्यक्त करें।

पाठ–15

मानवीय संस्कृति

मानवीयता पूर्ण संस्कार सहज कृति मानवीय संस्कृति कहलाती है। मनुष्य अपनी समझदारी के अनुसार जीता है एवं घटनाओं तथा कार्यक्रमों में अपनी समझदारी को व्यक्त करता है। समझदारी हर कार्यों में व्यक्त होती है। विभिन्न घटनाओं के समय अनेक लोग मिलकर प्रस्तुत होते हैं, यह प्रस्तुति सबकी समझदारी के अनुरूप होती है। इन सबको एक साथ मानवीय संस्कृति कहते हैं।

हम सभी मानव के जीने में कई घटनाएँ दिखाई पड़ती है। जैसे शिशु का जन्म होना, शिशु का नामकरण होना, शिशु का विद्या अध्ययन के लिए प्रस्तुत होना, विद्या अध्ययन के उपरान्त समझदारी सम्पन्न होना या शिक्षा पूर्ण होना, किसी व्यक्ति का देहावसान होना, सामाजिक एवं व्यवस्था के दायित्वों को स्वीकार करना जैसे शिक्षा संस्कार, समाज के अनेक मनुष्य मिलकर किसी समाज–उपयोगी कार्य को प्रारंभ करना जैसे विद्यालय भवन या बड़े जलाशय का निर्माण आदि। इन सभी अवसरों पर समाज के अनेक लोग मिलकर प्रस्तुत होते हैं, अपनी समझदारी के अनुसार कार्यक्रम संचालित करते हैं। इन सभी अवसरों को संयुक्त रूप में मानवीय संस्कृति कहते हैं।

मानवीय संस्कृति का ध्रुव बिन्दु मानवीय संस्कार है। मानवीय संस्कार, समझदारी पूर्ण मानसिकता है। समझदार मानव अर्थात समाधान सम्पन्न मानव। समाधान प्रत्येक मानव का लक्ष्य है। समाधान समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व मानव लक्ष्य है, इसमें प्रारंभिक भाग समाधान ही है।

समाधान सम्पन्न मानव में निम्न स्वीकृतियाँ होती हैं :

1. प्रत्येक मानव जीवन एवं शरीर का संयुक्त साकार रूप होना,

2. प्रत्येक मानव में जीवन बल, जीवन शक्ति, एवं जीवन रचना की समानता,

3. प्रत्येक मानव का लक्ष्य समान,

4. प्रत्येक स्त्री–पुरूष में जीवन क्षमता की समानता,

5. प्रत्येक शिशु–युवा एवं प्रौढ़–वृद्ध में जीवन क्षमता की समानता,
6. प्रत्येक समझदार मानव में समझ की समानता,
7. प्रत्येक समझदार मानव में अनुभव की समानता,
8. प्रत्येक समझदार मानव में आचरण की समानता,
9. प्रत्येक मानव अखण्ड मानव समाज का अंग होना एवं अखंड समाज में जीने का इच्छुक होना,
10. प्रत्येक शिशु जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक एवं सत्य वक्ता होना तथा पूर्व पीढ़ी से इसे प्राप्त करने का अधिकारी होना,
11. प्रत्येक मानव मे मानव अधिकारों की समानता

इस प्रकार समझदारी सम्पन्न मानव समाज के प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक अवसरों पर समाधान को व्यक्त करते हैं। जो शिशु एवं कुमार आयु के हैं वे सभी समझदारी सम्पन्न होने की प्रेरणा पाते हैं। इन्हीं अवसरों पर प्रत्येक परिवार अपनी समृद्धि को व्यक्त करता है। मानव समाज के सभी लोग अभयता पूर्वक जीते हैं, यह स्पष्ट होता है। सभी मानव साथ–साथ जीने एवं सह–अस्तित्व को व्यक्त करने में तत्पर होते हैं। इस प्रकार मानवीय संस्कृति का आशय मानव लक्ष्य प्रमाणित होना है।

मानव लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जीना एवं मानव लक्ष्य प्राप्त कर प्रमाणित करते हुए जीना–यह दो प्रकार के कार्यक्रम साथ–साथ मानव समाज में दिखते हैं। ये दोनों कार्यक्रम एक दूसरे के पूरक भी होते हैं। पूर्व पीढ़ी मानव लक्ष्य को प्रमाणित करते हुए जीती है एवं अग्रिम पीढ़ी मानव लक्ष्य की सहमति एवं स्वीकृति प्राप्त करते हुए जीती है। इस प्रकार मानवीय संस्कृति संस्कारों के उदय एवं संस्कारों के प्रमाणीकरण का सतत अवसर है।

मानवीय संस्कृति को पहचानने के अवसर निम्नलिखित पाँच प्रकार के होते हैं।

1. प्रतिदिन के व्यवहार एवं क्रिया कलापों में सम्बन्ध निर्वाह :

सम्बंध निर्वाह होना सम्बन्धों के सही पहचान के उपरान्त ही हो पाता है। सम्बंधों की पहचान

हो पाना ही मानवीयता पूर्ण संस्कार है।

2. मानव शिशु के जन्म से मानव देहावसान तक विभिन्न घटना एवं स्थितियों में निर्वाह प्रणाली :

मानव शिशु का जन्म एक प्राकृतिक शारीरिक घटना है। इसके उपरान्त नामकरण, शिक्षा प्रारंभ, अध्ययन में पारंगत, विवाह संस्कार, जन्म दिवस एवं देहावसान की घटनाएँ प्रत्येक मानव के साथ एक समान हैं। ऐसी स्थितियों में समाज में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका, भागीदारी का निर्वाह हो पाना मानवीय संस्कृति कहलाती है। समाधान पूर्ण मानसिकता से यह सफल होता है।

3. विभिन्न सामाजिक दायित्वों के साथ निर्वाह मानव समाज में प्रत्येक समझदार व्यक्ति भागीदारी करता है। ऐसी स्थितियों में अनेक सामाजिक एवं व्यवस्थागत दायित्व समय–समय पर अनेक व्यक्ति निर्वाह करते हैं। ऐसे दायित्वों को स्वीकारने का अवसर, ऐसे दायित्वों के सफलता पूर्वक निर्वाह करने पर सामाजिक अभिनन्दन, ऐसे दायित्वों के हस्तांतरण के समय विभिन्न समारोहों का आयोजन होता हैं। ऐसे समारोहों में कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, विश्वास जैसे श्रेष्ठतम व्यवहार मूल्यों का अनुभव एवं शिष्ट मूल्यों के प्रकाशन द्वारा मानवीय संस्कृति व्यक्त होती है।

4. विभिन्न प्राकृतिक उत्सव के अवसर :

ऋतु घटनाएँ प्रकृति में आवश्यंभावी हैं। ऋतुएँ क्रम से आती है। ऐसे अवसरों पर समारोह आयोजित कर ऋतु में स्वस्थ रहने के तरीके, उत्पादन–कार्य के अवसर एवं अनिवार्यता का स्मरण, दायित्वों का निश्चयन किया जाता है। यह मानवीय संस्कृति का एक भाग है।

5. मेलों का आयोजन :

मानव समाज द्वारा भिन्न–भिन्न स्थानों पर विभिन्न उत्पादन किए जाते हैं। इनमें श्रेष्ठता के लिए शोध–कार्य भी होते रहते हैं। इस प्रकार के सभी उत्पादों की प्रदर्शनी सभी यंत्रों एवं उपकरणों की प्रदर्शनी एवं प्रचार किए जाते हैं। विभिन्न शोधों का प्रचार एवं प्रदर्शन किया जाता हैं। वस्तुओं के विनिमय के अवसर उपलब्ध रहते हैं। विभिन्न उत्पादनों के बारे में चर्चा एवं लघु प्रशिक्षण भी दिए जाते हैं। इन अवसरों में मानवीय संस्कृति प्रकट होती है। समृद्धि को

प्रमाणित करने का अवसर एवं इसके लिए किए जाने वाले उद्यम का वर्णन प्रचार, प्रदर्शन मानवीय संस्कृति का प्रकाशन है।

मानवीय संस्कृति को व्यक्त करने के माध्यम :

मानवीय संस्कृति को व्यक्त करने के लिए मुख्यतः पाँच माध्यम हैं।

1. भाषा 2. अवसर 3. सेवा सत्कार 4. सज्जा 5. संगीत ध्वनि

इस प्रकार मानव परिवार एवं समाज में जीते हुए अपनी समझदारी को व्यक्त करता है। साथ–साथ जीते हुए समझदारी को व्यक्त करना एवं अग्रिम पीढ़ी समझदारी के लिए सहमत होना मानवीय संस्कृति का उद्देश्य है।

अभ्यास व अध्ययन

1. मानवीय संस्कृति किसे कहते है?
2. मानवीय संस्कार का क्या अर्थ है?
3. समाधान संपन्न मानव में कौन सी स्वीकृतियाँ होती हैं?
4. मानवीय संस्कृति को पहचानने के कौन से अवसर हैं?
5. मानवीय संस्कृति को व्यक्त करने के लिए कितने माध्यम हैं? कौन से?

पाठ–16

मानव इतिहास

विगत की कृतियों एवं घटनाओं का श्रृंखलाबद्ध आँकलन इतिहास कहलाता है। अर्थात आज से पहले जो–जो घटनाएँ हुई हैं उनको क्रम बद्ध करना इतिहास है। जैसे आज एक विद्यार्थी कक्षा 6 मे है, तो वह सीधा कक्षा 6 में नहीं आया। वह पहले कक्षा 1, 2, 3 होते हुए आता है। इसी प्रकार विद्यालय आने के पूर्व एक शिशु चलना, बोलना सीख लेता है। ये सभी क्रियाएँ इतिहास कहलाती हैं। इसी प्रकार शिशु के बोलने के क्रम को समझें तो पहले, माँ, आ, बा जैसे छोटे शब्द बोलता है, धीरे–धीरे बड़े शब्द बोलता है। इस क्रम में पूरा बोलना सीखता है। यह बोलने का इतिहास कहलता है।

आज हम लोग अनेक आयामों में जीते हैं, अनेक प्रकार के कार्यक्रमों में भागीदारी करते हैं, ये सब पहले ऐसे ही नहीं थें? उदाहरण के लिए आज विद्यालय के उच्च कक्षाओं में कम्प्यूटर की शिक्षा दी जाती है। जबकि अध्यापकों को देखें तो वे लोग विद्यालय में कम्प्यूटर की शिक्षा नहीं पाए थे। आज के विद्यार्थी शिशु काल से ही दूरदर्शन या टेलीवीजन देख रहे हैं जबकि इनके पिता के आयु के लोग वयस्क होने पर दूरदर्शन को देख पाए। आपके दादाजी वृद्ध होने पर इसे देख पाए और दादाजी के पिता जी अर्थात परदादा की बात करें तो वे कभी भी टेलीवीजन नहीं देखे क्योंकि उस समय टी0वी0 था ही नहीं। उसका अविष्कार ही नहीं हुआ था। इसी प्रकार आज से 175 वर्ष पूर्व लोग वायुयानों में यात्रा नहीं करते थें – क्योंकि उस समय वायुयान का अविष्कार नहीं हुआ था। आज से 200–250 वर्ष पूर्व लोग ट्रेन में नहीं बैठते थे परन्तु घोड़ा–गाड़ी में बैठते थे। इसे दूसरे प्रकार से देखते हैं कि पहले मनुष्य पैदल चलता था एवं दौड़ता था। कुछ दिनों बाद बलवान पशुओं को पालने लगा एवं उन पर बैठकर यात्रा करने लगा। जैसे–बैलगाड़ी, घोड़गाड़ी, ऊँट, हाथी आदि। इसके पश्चात साइकिल में यात्रा करने लगा। कुछ वर्षो बाद ईंधन से चलने वाले मोटर सायकिल बन गए और उनसे यात्रा करने लगा। अधिक तेज़ गति से यात्रा होने लगी। इस प्रकार आज वायुयान एवं अंतरिक्षयान के द्वारा यात्राएँ हो रही हैं। यह मानव के आवागमन या यात्राओं का इतिहास कहलाता है।

इस प्रकार मनुष्य जितने विधा में कार्य कर रहा है एवं जी रहा है उन सबका इतिहास है। उनका क्रमबद्ध आंकलन किया जा चुका है। मानव अनेकों विधाओं में कार्य करता है – उन सबका इतिहास लिखा है, विद्यार्थी उनको पढ़ते हैं।

इस प्रकार विगत से आज तक का आंकलन इतिहास कहलाता है। यह घटनाओं एवं मानव कृतियों का इतिहास है।

पूर्व में मानव के आवागमन के इतिहास का संक्षिप्त विर्णण किया गया है। इनके द्वारा हम कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं जैसे आज से 60–70 वर्ष पूर्व मानव अंतरिक्षयान नहीं बना पाया था। आज से 120 वर्ष पूर्व मानव वायुयान नहीं बना पाया एवं 250–300 वर्ष पूर्व इंजन से चलने वाले यंत्र नहीं बनाया था।

इसे हम इस प्रकार भी समझते हैं कि मानव पहले स्व–शक्ति से चलता रहा। इसके पश्चात अधिक बलशाली पशुओं को नियंत्रित कर अधिक गति एवं बल प्राप्त कर यात्रा किया। इसके पश्चात प्राकृतिक ईंधन के द्वारा और अधिक बल एवं गति प्राप्त कर लिया। इस प्रकार क्रम से अधिक गति एवं अधिक शक्ति को प्राप्त करने की कल्पना होती गई, इसे साकार भी करता रहा। इस प्रकार हमे मानव के मानसिकता में भी परिवर्तन का पता चलता है। घटनाओं एवं कृतियों का मानसिकता से सीधा सम्बंध है। मानव शरीर और जीवन का संयुक्त साकार रूप है। जीवन, शरीर को चलाता है। जीवन एवं शरीर मिलकर अन्य वस्तुओं को चलाते हैं। इस प्रकार इतिहास के आंकलन से मानव की मानसिकता में परिवर्तन का आंकलन होता है।

इस प्रकार मानव इतिहास को दो प्रकार से समझ सकते है – (अ) क्रम से घटित घटनाओं एवं कृतियों का आंकलन (ब) क्रम से मानसिक स्थितियों, जीने का ढंग एवं इनमें परिवर्तन का आंकलन

(अ) क्रम से घटित घटनाओं एवं क्रतियों का आंकलन –

इसमें अनेक विधाओं में क्रम से हुए परिवर्तनों का आँकलन किया जाता है। ये संख्या में अनेक हैं। इनमें से मुख्य कुछ बिन्दु निम्न हैं :

1. मानव आहार का इतिहास

2. मानव आहार के प्राप्त करने की विधियों का इतिहास

    क. कृषि

    ख. पशुपालन

    ग. मधुमख्खी पालन

3. मानव आवास का इतिहास
4. मानव अलंकार व वस्त्र का इतिहास
5. ईंधन का इतिहास
6. यातायात के साधनों का इतिहास
7. शिक्षा का इतिहास
8. भाषा का इतिहास
9. संख्या गणना, गणित एवं इनके विधियों का इतिहास
10. मानचित्र रचना का इतिहास
11. दूर संचार का इतिहास
12. अंतरिक्ष यात्रा का इतिहास
13. भूमि के नाप एवं अभिलेख का इतिहास
14. जल प्रबंधन का इतिहास
15. स्वास्थ्य संरक्षण और चिकित्सा विधि का इतिहास
16. लेखन सामग्री का इतिहास
17. खेलों का इतिहास

18. मेलों एवं विनिमय केन्द्रों का इतिहास

इस प्रकार अनेकों विद्याओं में मानव व्यक्त होता रहा है। इन सब विद्याओं का पृथक–पृथक इतिहास है।

(ब) क्रम से मानसिक स्थितियों, जीने का ढंग एवं इनमें परिवर्तन का आंकलन :

यह मानव इतिहास का प्रमुख भाग है। इससे मानव की मानसिकता एवं उसमें परिर्वतन का आंकलन होता है। इनमें यह स्पष्ट होता है कि मानव की मानसिकता बदल रही है। इनके बदलने की दिशा भी स्पष्ट होती है। यह भी स्पष्ट होता है कि एक–एक सीढ़ी चढ़ता हुआ मानव अच्छी स्थिति के खोज में है। इसे प्रधानतः 7 भागों में देखा जाता है।

1. सामुदायिक इतिहास – मानव हज़ारों वर्ष पूर्व से अलग–अलग स्थानों मे रहता रहा है। इनमें शरीर रचना एवं रंग के आधार पर भिन्नता स्पष्ट होती है। मानव अलग–अलग मान्यता के साथ जीते रहें। अपना एवं पराया मानने के आधार पर एक प्रकार का घटना क्रम चला। यह सामुदायिक इतिहास कहलाता है।
2. शिला व धातु युग – मानव आदि काल से वन, में जीता रहा। इसमें पत्थरों को औज़ार मानता रहा। यह शिला युग कहलता है। क्रम से धातु युग में जीता हुआ आज तक के मानव का आंकलन है।
3. वैचारिक इतिहास – इसमें समय–समय पर विभिन्न विचार के द्वारा संचालित होने के आधार पर अनेक घटनाओं का वर्णन है।
4. सांस्कृतिक इतिहास – मानव समाज में सांस्कृतिक परिवर्तन का आंकलन।
5. आर्थिक इतिहास – इससे अर्थ के बारे में मान्यताएँ एवं इन्हें प्राप्त करने के कार्यक्रमों का वर्णन है।
6. राजनैतिक इतिहास – साथ–साथ जीने पर, होने वाले प्रभाव एवं घटनाओं से सुखी होने के लिए शासन प्रणाली बनी। इसमें इनका आंकलन किया जाता है।
7. धार्मिक इतिहास – प्रत्येक मनुष्य का कोई लक्ष्य है, इसे प्राप्त करने के लिए जीने की

विधि धर्म कहलाती है। इसके आंकलन को हम धार्मिक इतिहास कहते हैं।

इस प्रकार मानव इतिहास के अध्ययन से हमें आदिकाल से मनुष्य की मानसिकता, जीने का ढंग, उनमें परिवर्तन के कारण एवं अग्रिम स्थिति का अनुमान होता है।

अभ्यास व अध्ययन

1. इतिहास का क्या अर्थ है?
2. आवागमन के इतिहास के बारे में संक्षिप्त में लिखें।
3. मानव इतिहास को कितने प्रकार से समझ सकते हैं? वे कौन से?
4. मानव की मानसिकता तथा उसमें परिवर्तन को आंकलन को जितने भागों में देखा जाता है, उसको लिखिए।

गतिविधि

(शिक्षक के लिए) कक्षा में जितने छात्र/छात्राएँ हैं, उनके छह समूह बनाएं जाएं। प्रत्येक समूह को निम्न सूची से एक विषय देकर अपने गाँव/शहर की जानकारी को गाँव/मुहल्ले के बुजुर्गों से एकत्रित करने का काम करें। एकत्रित की हुई जानकारी सुंदरता लिपिबद्ध करके पाठशाला की लाइब्रेरी में संग्रहित किया जाए, ताकि आने वाले बच्चों को भी वह जानकारी उपलब्ध हो जाएं।

1. गाँव में आहार का इतिहास

2. गाँव में आवास का इतिहास

3. अलंकार व वस्त्र का इतिहास

4. स्वास्थ्य संरक्षण और चिकित्सा विधि का इतिहास

5. जल प्रबंधन का इतिहास

6. ईंधन का इतिहास

पाठ–17

मानवीय व्यवस्था

वर्तमान में विश्वास एवं भविष्य का आश्वासन ही मानवीय व्यवस्था है। मानवीय व्यवस्था समझदार मनुष्यों के साथ जीने का फलन है अर्थात समझदार मनुष्य साथ–साथ जीते हैं। यह जीने का स्वरूप मानवीय व्यवस्था कहलाता है। मानव के जीने के स्वरूप में अनुभव एवं विचार मुख्य भाग है। अनुभव के आधार पर विचार निःसृत होता है। जैसे मानव सुख का अनुभव करता है, उसके विचार परस्पर पूरक होकर जीने के लिए प्रेरणादायी होते हैं।

यदि कोई मनुष्य सुख का अनुभव न करे, दुखी रहे तो उसके विचार पूरक होकर जीने के लिए नहीं होतें, साथ–साथ जीने के लिए नहीं होते।

मानवीय व्यवस्था वर्तमान में विश्वास का प्रमाण है। सभी समझदार व्यक्ति योजनाबद्ध होकर जीते हैं, जिससे मानव का वर्तमान में विश्वास बना रहे। शिशु एवं युवा उनका अनुसरण एवं अनुकरण करते हैं। शिक्षा के द्वारा मानवीय व्यवस्था को समझते हैं। इस प्रकार ऊपर की पीढ़ी समझदारी के साथ जीती है एवं नई पीढ़ी शिक्षा के द्वारा समझते हुए जीने का अभ्यास करती हैं। यह मानवीय व्यवस्था है।

मानवीय व्यवस्था वर्तमान में विश्वास हाने का नाम है। वर्तमान में विश्वास होने की निरन्तरता ही भविष्य का आश्वासन है। मानव लक्ष्य पूरा होने पर ही वर्तमान में विश्वास होता है। व्यक्ति में समाधान होता है। परिवार के सभी या अधिकांश व्यक्ति समाधानित होने पर परिवार में समाधान एवं समृद्धि का प्रमाण होता है। यह परिवार, व्यवस्था में जीने वाला परिवार कहलाता है। इसे स्वायत्त परिवार भी कहते हैं। स्वायत्त परिवार मानवीय व्यवस्था का सबसे छोटा स्वरूप है या स्वायत्त परिवार

मानवीय व्यवस्था की मूल इकाई है। कई स्वायत्त परिवार मिलकर जीते हैं तब समाधान एवं समृद्धि के साथ–साथ अभयता का भी प्रमाण स्पष्ट होता है। समाज के सभी व्यक्ति न्याय में जीने का विश्वास करते हैं, सभी व्यक्ति को न्याय मिलने का विश्वास होता है। सभी मानव–परिवार समाधान, समृद्धि, अभयपूर्वक जीते हैं तो सह–अस्तित्व भी प्रमाणित होता है। यह पूरी धरती के साथ संभव होता है अर्थात् सह–अस्तित्व का प्रमाण सार्वभौम व्यवस्था में होता है। पूरी धरती के लोग मिलकर एक बड़ी व्यवस्था के अंग होकर कार्य–व्यवहार करते हैं। यह मानवीय व्यवस्था कहलाती है।

मानवीय व्यवस्था का प्रमाण परिवार में भी मिलता है एवं सार्वभैम व्यवस्था के रूप में धरती के सभी स्थानों पर भी मिलता है। पूरी धरती पर एक व्यवस्था की समझ के साथ जीने का फल सार्वभौम व्यवस्था है। पूरी धरती एक व्यवस्था है, समग्र मानव अथवा समाज एक व्यवस्था है, उसमें भागीदारी करने के लिए जीना ही समाधान है। ऐसे समाधान सम्पन्न होने पर ही स्वायत्त परिवार प्रमाणित होता है। सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के अलावा अन्य प्रकार से जीने पर परिवार में व्यवस्था संभव नहीं है एवं अन्य स्तर पर भी व्यवस्था संभव नहीं है।

मानवीय व्यवस्था में 5 आयाम होते हैं :

1. न्याय–सुरक्षा
2. उत्पादन–कार्य
3. विनियम–कोष
4. शिक्षा–संस्कार
5. स्वास्थ्य–संयम

उपरोक्त पाँच आयामों की सफलता पर ही मानवीय व्यवस्था सफल होती है। इन पाँचों से कम में मानवीय व्यवस्था की कल्पना संभव नहीं है। इनमें से न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य एवं विनिमय–कोष व्यवस्था के प्रधान कार्यक्रम हैं। शेष दो आयाम शिक्षा–संस्कार एवं स्वास्थ्य–संयम मानवीय व्यवस्था के स्रोत हैं। शिक्षा–संस्कार द्वारा मानवीय व्यवस्था में जीने की मानसिकता बनती है एवं व्यवस्था में भागीदारी करने की योग्यता का विकास होता है। स्वास्थ्य–संयम द्वारा

शरीर की पुष्टि होती है जिससे व्यवस्था में भागीदारी के लिए अनिवार्य श्रम एवं सेवा कार्यों को पूरा करने योग्य शरीर बना रहता है।

परिवार व्यवस्था मानवीय व्यवस्था का सबसे छोटा स्वरूप है। परिवार व्यवस्था में भागीदारी करना ही सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करना है। परिवार व्यवस्था में भागीदार न करना या न कर पाना सार्वभौम व्यवस्था के लिए बाधक है। परिवार व्यवस्था में भागीदारी करने में सफल होने पर इससे बड़ी व्यवस्था में भागीदारी की योग्यता विकसित होती है। यह परिवार समूह व्यवस्था कहलाती है। यह परिवारों का समूह होता है। यह स्वायत्त परिवारों की एक व्यवस्था होती है। इसमें भागीदारी करना परिवार समूह व्यवस्था कहलाता है। इस प्रकार क्रम से और बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करने की योग्यता विकसित होती है एवं विश्व परिवार व्यवस्था में भागीदारी संभव होती है। मानवीय व्यवस्था का सबसे महत्व पूर्ण भाग है – परिवार व्यवस्था में भागीदारी। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है।

इस प्रकार मानवीय व्यवस्था मानव लक्ष्य के सफल होने का प्रमाण है। मानव लक्ष्य प्रत्येक शिशु एवं युवा को सुलभ हो सके इसके लिए मानवीय व्यवस्था शिक्षण एवं प्रशिक्षण स्थली है। मानव लक्ष्य प्राप्त हो सके इसके लिए यह अभ्यास स्थली है।

प्रत्येक मानव व्यवस्था में जीना चाहता है। अव्यवस्था किसी भी मनुष्य की चाहत नहीं है। विचार, व्यवहार में निश्चयता होने पर मानवीय व्यवस्था साकार होती है। मानवीय व्यवस्था का सम्पूर्ण स्वरूप दस सोपनीय व्यवस्था है जिसका स्वरूप निम्न है :

1. परिवार व्यवस्था

2. परिवार समूह व्यवस्था

3. ग्राम/मुहल्ला व्यवस्था

4. ग्राम समूह व्यवस्था / नगर व्यवस्था

5. ग्राम क्षेत्र व्यवस्था

6. मंडल व्यवस्था

7. मंडल समूह व्यवस्था

8. मुख्य राज्य व्यवस्था

9. प्रधान राज्य सभा

10. विश्व राज्य सभा

अभ्यास व अध्ययन

1. मानवीय व्यवस्था किसे कहते हैं?
2. स्वायत्त परिवार का क्या अर्थ है?
3. स्वायत्त परिवार प्रमाणित कैसे होता है?
4. मानवीय व्यवस्था के कौन से आयाम हैं?
5. दस सोपानीय व्यवस्था का स्वरूप बताइए।

पाठ–18

दृष्टा, कर्ता और भोक्ता

प्रकृति में चार वास्तविकताएँ हैं जिनके बारे में हम पहले पढ़ चुके हैं पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था। इसके अलावा एक और वास्तविकता के बारे में हमने पढ़ा है – जिसको हम आकाश या शून्य कहते हैं।

पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञान अवस्था – यह चारों अवस्था स्वयं स्फूर्त प्रकाशित हैं अर्थात हमें इनके होने के संकेत सहज ही मिलते हैं। अपने आस–पास के वातावरण में पेड़, पौधे, नदी, तालाब, झरने हमें सहज दिखते हैं। आसमान में तारे, सूरज, चन्द्रमा के होने को भी हम अपनी आँखों से देखते हैं। कुछ वास्तविकताओं के होने को हम उनसे उत्पन्न आवाज़ के माध्यम से भी पहचानते हैं जैसे चिड़ियों का चहकना या बादल का गरजना। कई वस्तु के होने का आभास हमें स्पर्श से भी होता है – जैसे ग्रीष्म ऋतु में लू या हवा का चलना या हल्की फुल्की बूंदा बांदी का होना। भोजन करते वक्त ऐसी कई वस्तु हैं जो हमें दिखती नहीं है जैसे नमक या चीनी – परंतु उनके स्वाद से उनके होने का संकेत हम सभी को मिलता है। बगीचे की हवा में सुगंध से कई तरह क फूल जैसे गुलाब आदि को हम पहचानते हैं। इस प्रकार रूप, स्पर्श, स्वाद, गंध और शब्द – इन 5 इन्द्रियों के माध्यम से हर मानव को अस्तित्व में कई वास्तविकताओं के होने का संकेत मिलता है। मानव को इसलिए दर्शक कहते हैं अर्थात देखने वाला।

यह चारों अवस्था क्रियाशील हैं और अपने होने को प्रकाशित करती रहती है। जैसे हम मानव प्रकृति के साथ कार्य और मानव के साथ व्यवहार की क्रिया करते हैं और यह प्रकाशित होता है। हम क्या काम कर रहे हैं, कैस कर रहे हैं, दूसरे के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं – यह अन्य मानव को दिखता हैं। पशु–पक्षी भी अपने होने को प्रकाशित करते हैं जैसे चिड़ियाँ उड़ती हैं, चहचहाती हैं, अपने घोंसले बनाती हैं, अंडे देती हैं आदि। पेड़–पौधे पुष्ट होते हैं, उनमें पत्तियाँ आती हैं, कुछ दिनों के बाद फूल और फिर फल आते हैं। चारों अवस्था अपने क्रिया कलाप के साथ प्रकाशित हैं और इस प्रकार सभी मानव के लिए दृश्य हैं। चारों अवस्था के साथ आकाश भी एक वास्तविकता है और मानव के लिए दृश्य है।

हम अपने हर कार्य और व्यवहार को अपने और दूसरों को सुखी रखते हुए करना चाहते हैं। हर वास्तविकता के साथ हम सुखी रहें और प्रकृति की अन्य अवस्थाएँ भी समृद्ध रहें – हम सभी लोगों की ऐसी ही आशा है। लेकिन ऐसा कर पाने के लिए हमारे वातावरण में जो भी वास्तविकताएँ हैं उन्हें समझना, उनके साथ अपने संबंध को जानना – हम सभी मानव के लिए आवश्यक है। जैसे पानी सभी मानव के लिए उपयोगी है और हमारी आवश्यकता है। हमारे वातावरण में तालाब साफ़–सुथरे रहें और उनमें पानी बना रहे इसके लिए हमें क्या करना चाहिए, पानी का कैसे उपयोग करना चाहिए आदि – यह हम सभी को समझने की आवश्यकता है।

वातावरण को समझना हमारे सुखी रहने के अनिवार्य है। हमारे वातावरण में जो भी वास्तविकताएं हैं उनके होने का एक प्रयोजन है जिसको हम सभी समझना चाहते हैं। मात्र संकेत ग्रहण करने से हमारा सुखी रहने का लक्ष्य पूरा नहीं होता है। चारों अवस्थाओं और आकाश को समझने की इच्छा के साथ इन्द्रियों से संकेत ग्रहण करने को हम दृष्टि कहते हैं।

हमारे वातावरण में हर वास्तविकता के होने की एक निश्चित उपयोगिता है। जैसे मिट्टी, पत्थर, पानी, वायु, पेड़, पौधे, जीव–जानवर, मानव – हर वास्तविकता – एक दूसरे के लिए पूरक है और एक दूसरे के बने रहने में सहायक है। पेड़ मिट्टी का उपयोग करता है, उसमें जो रसायन है उससे पुष्ट होता है और सूख जाने के बाद मिट्टी को पहले से ज़्यादा उर्वरक बना देता है। यह मिट्टी और पेड़ का संबंध हमें समझ में आता है। इस प्रकार हमारी दृष्टि में हमें जो स्वीकार होता है अर्थात हमें जो समझ में आता है उसको हम दर्शन कहते हैं।

चारो अवस्थाएँ जैसी हैं उनको वैसे ही जब हम समझ लेते हैं – तब हम दृष्टा कहलाते हैं। इन चारों अवस्थाओं के साथ जीना अर्थात उनके साथ अपने संबंध का निर्वाह करना – ऐसा करने पर हम कर्ता कहलाते हैं। ऐसा कर पाने पर हम तृप्ति का अनुभव करते हैं और हम भोक्ता कहलाते हैं। इस प्रकार मानव ही दृष्टा, कर्ता और भोक्ता है। मानव ही चारों अवस्थाओं को पूर्ण रूप में समझ सकते हैं और इनको समझ कर तृप्ति पूर्वक जी सकते हैं।

आइए एक बार जो परिभाषाएं हमने इस पाठ में पढ़ी उन्हें फिर से स्मृति में लायें।

वास्तविकता – आकाश और चार अवस्थाएँ (पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञान अवस्था);

दृश्य – आकाश और चारों अवस्था (जो क्रिया करते हुए अपने को प्रकाशित करते रहते हैं);

दर्शक – चारों अवस्थाओं को अपने 5 इन्द्रियों (रूप, शब्द, रस, गंध, स्पर्श) से देखने वाला;

दृष्टि – सुखी रहने के लिए समझने की इच्छा के साथ इन्द्रियों से संकेत को ग्रहण करने वाला;

दर्शन – चारों अवस्थाओं का रूप, गुण, स्वभाव, धर्म और उनके अंतरासंबंध;

दृष्टा – चारों अवस्थाओं को समझा हुआ मानव;

कर्ता – चारों अवस्थाओं के साथ संबंध को निर्वाह करने वाला;

भोक्ता – चारों अवस्था के साथ संबंध के निर्वाह से तृप्त होने वाला।

अभ्यास व अध्ययन

1. दर्शक/दृष्टा कौन है?
2. दृश्य क्या है?
3. दृष्टि किसे कहते है?
4. दर्शन किसे कहते है?
5. कर्ता का क्या अर्थ है? कर्ता कौन है?
6. भोक्ता का क्या अर्थ है? भोक्ता कौन है?
7. दृष्टा का क्या अर्थ है? दर्शक और दृष्टा में क्या अंतर है?

पाठ–19

प्रतीक

सभी मानव निरंतर सुखी रहना चाहते हैं। सुखी रहने के लिए हमें अपने जीने के सभी दिशाओं में जो तालमेल है उसको समझना पड़ता है। स्वयं में तालमेल क्या है, शरीर के साथ तालमेल, परिवार, समाज में तालमेल और अंत में प्रकृति और पूरे अस्तित्व के साथ तालमेल क्या है, इसको समझना हम सभी के लिए आवश्यक है। यह तालमेल क्या है और इसको कैसे पाया जाए। यह सभी के लिए एक है, सामान है। इस प्रकार हर मानव की समझ एक है, समान है।

हम सभी मानव अपने इस तालमेल की समझ को व्यक्त करना चाहते हैं। यह हमारी आवश्यकता है। अपनी समझ को व्यक्त करने के लिए हम प्रतीक का इस्तेमाल करते हैं। प्रतीक का अर्थ है – समझ को इंगित/चिन्हित करने के लिए कोई वस्तु। इस प्रकार भाषा एक प्रतीक है और मानव इसका उपयोग अपनी समझ को व्यक्त करने के लिए करते हैं। प्रतीक का मानव अपनी समझ को ही दूसरों तक पहुँचाने के लिए उपयोग करते हैं। इस प्रकार हर प्रतीक के पीछे एक अर्थ होता है। यहाँ यह बात गौर करने की है कि प्रतीक और अर्थ अलग–अलग है। प्रतीक, अर्थ की तरफ हमारा ध्यान ले जाने के लिए होता है और प्रतीक स्वयं में अर्थ नहीं होता। जैसे एक गीत का उदाहरण लेते हैं। कोई भी गीत के पीछे एक भाव होती है जिसे एक कलाकार हम तक पहुँचाने की कोशिश कर रहा होता है। उसके लिए वह एक कविता, धुन और गायन को मिलाकर एक गीत तैयार करता है। गीत उस भाव का प्रतीक होता है।

मानव अक्षर, शब्द, भाषा, भंगिमा और मुद्रा का उपयोग करते हैं। ऐसी भाषा, भंगिमा और मुद्रा जिससे हमारा सुखी रहना बन पाए, एक दूसरे के साथ विश्वास पूर्वक जी पाए – ऐसी भाषा, मुद्रा और भंगिमा सभी मानव को स्वीकार्य होती है। यह इस प्रतीक का सही और सार्थक उपयोग है। अर्थ के साथ ही प्रतीक की सार्थकता है। जब कभी भी हम प्रतीक मात्र में जीते हैं तो जीने में तृप्ति नहीं होती और हमें अपना जीना अधुरा लगता है। इसलिए प्रतीक प्राप्ति नहीं है अर्थात मात्र प्रतीक को पाकर तृप्त नहीं हुआ जाता।

इसी प्रकार मानव संस्कृति में कई प्रकार के प्रतीक हैं। जैसे चित्र, चलचित्र, रेखांकन, गीत, नृत्य, कहानी, गाथाएँ इत्यादि। चित्र, रेखांकन, गीत, कहानी आदि का निर्माण कोई मानव ही करता है। साथ ही, इन प्रतीक और उसमें इंगित अर्थ मानव को ही समझ में आता है। इस तरह मानव के सुखी रहने की इच्छा को ध्यान में रखते हुए इनका उपयोग हर तरह से सार्थक हो पाता है।

हम सभी लोगों का लक्ष्य समाधान, समृधि, अभय, सह–अस्तित्व – समान है। हम सभी मानव के शरीर की मूल रचना भी एक जैसी है और हम सभी एक ही वास्तविकता को चाहते हैं – निरंतर सुख पूर्वक रहना। प्रतीक में समानता हमारा लक्ष्य नहीं होता। अपितु समझ में समानता हम सभी मानव का लक्ष्य है। अपनी इस एक समझ को व्यक्त करने के लिए हमारे प्रतीक भिन्न हो सकते हैं और यह हमारे वातावरण पर निर्भर करता है कि हम कैसे प्रतीक का इस्तेमाल करें। जीवन की तृप्ति के लिए स्नेह, प्रेम, विश्वास जैसे भाव की अपेक्षा रहती है।

अभ्यास व अध्ययन

1. प्रतीक का क्या अर्थ है? उदाहरणों सहित स्पष्ट कीजिए।
2. हम प्रतीकों का उपयोग क्यों करते हैं?
3. "प्रतीक प्राप्ति नहीं है" – इसे स्पष्ट करें।
4. प्रतीकों का सार्थक उपयोग किस तरह हो पाएगा?

पाठ–20

इकाईत्व

हम अपने वातावरण में मानव, पशु पक्षी, पेड़–पौधे और खेत, पहाड़, नदियाँ, झरने जैसे अनेक प्राकृतिक वस्तु को पाते हैं। आइए हम अपने वातावरण को और ध्यान से देखें।

हम अपने माता–पिता, भाई–बहन सगे–संबंधियों के साथ रहते हैं और मित्रजन, गुरुजन, विद्यालय में साथ पढ़ने वाले सहपाठियों को हम हर दिन मिलते हैं। घर के आस–पास रहने वाले हमारे जान पहचान के बहुत से लोगों को लगभग हर दिन मिलते हैं और हम उनका अभिवादन करते हैं।

मानव के अलावा गाँव में गाय, बैल जैसे कई पशु भी होते हैं और हम उन्हें पहचान पाते हैं। पक्षियों के झुण्ड गगन में विचरते हुए हमारे गाँव की शोभा हैं। हरे भरे पेड़–पौधे हमारे घर के आस–पास बहुतायत में हैं। हमारे गाँव के चारों ओर खेत हैं जिसमें उग रही फसल को हम पहचानते हैं। हमारे गाँव में हमारा और हमारे जानने वालों के घर हैं और हम सभी मिलकर अपने गाँव को साफ़–सुथरा रखते हैं। हम अपनी दृष्टि आसमान की ओर फैलाते हैं तो सूर्य, चन्द्रमा और बहुत सारे तारे भी दिखाई देते हैं।

हमारा वातावरण बहुत विस्तृत और समृद्ध है। हम इसमें अनेक तरह की वास्तविकता को देख कर पहचान पातें हैं। मानव–मानव संबंधों में हम माता और पिता को पहचानता हैं। इस प्रकार पशु–पक्षी भी हमें अलग–अलग पहचान में आते हैं। एक पेड़ दूसरे पेड़ से अलग है, यह हमें साफ़ साफ़ पहचान में आता है। एक पहाड़ को हम दूसरे पहाड़ से भेद कर पाते हैं, एक नदी या झरने को दूसरे से अलग पहचान पाते हैं। आसमान में भी सूर्य और चन्द्रमा में हम भेद कर पाते हैं। इन सबको हम इकाई कहते हैं। इकाई का अर्थ है – ऐसी वास्तविकता जो हर दिशा में सीमित हो। जैसे मानव शरीर की एक लम्बाई और चौड़ाई है, जो एक सीमा तक है। इस प्रकार मानव शरीर सब दिशाओं जैसे ऊपर–नीचे, दायें–बाएँ और आगे–पीछे में सीमित है। इस प्रकार मानव को जितनी भी वास्तविकताएँ पहचान में आती हैं, जो सीमित है, उनको हम इकाई की संज्ञा भी देते हैं।

प्राणवस्था की हर एक इकाई – पेड़–पौधे, घास, अनाज, अनाज की हर डाली अपने फैलाव में सीमित हैं। गाय, बैल, घोड़े, हाथी, हर प्रकार के पक्षी जीव अवस्था की इकाइयाँ हैं और यह सब हर दिशा से सीमित हैं। छोटी से छोटी – जैसे कोई भी मिट्टी का कण हो या बड़ी से बड़ी वस्तु जैसे भवन या कोई इमारत हो, यह सब इकाई हैं।

हमारे आस–पास ऐसी कई वस्तु हैं जो आँखों में नहीं समाती और उनका छोर नहीं प्रतीत हो पाता। जैसे कोई नदी हो या फिर समुद्र या बहुत बड़ा पहाड़। परन्तु इस तरह की वस्तु का भी कोई छोर है – यह हमें समझ में आता है। अगर हम समय लगायें और उस छोर तक पहुँचने की कोशिश करें तो उस छोर को भी पा लेंगें। मानव ने इन वस्तु के छोर को पाया ही है। इस तरह से यह बड़ी से बड़ी वस्तु की भी सीमा है।

अब पृथ्वी, चंद्रमा, बृहस्पति, सूर्य जैसे ग्रह–गोल – क्या ये वस्तुएँ असीमित हैं? थोड़ा जाँचने पर यह समझ में आता है कि ऐसा तो नहीं है। अगर पृथ्वी असीमित होती तो चन्द्रमा, सूर्य, बृहस्पति कहाँ होतें ? इस विधि से बड़े से बड़ा ग्रह भी सीमित हैं, यह भी समझ में आता है। कई ग्रह–गोल के बारे में मनुष्य ने बहुत जानकारी एकत्रित की है, चित्र भी लिए हैं और इसमें यह बात स्पष्ट होती है। परन्तु कितने ग्रह–गोल के बारे में मानव को कोई जानकारी नहीं है, फिर भी हम विश्वास के साथ यह बात जान सकते हैं कि कोई ग्रह–गोल कितना भी बड़ा हो उसकी सीमा है – यह निश्चित है। वस्तु चाहे कितनी भी सूक्ष्म हो या कितनी भी विशाल – हर सीमित वस्तु एक इकाई है – यानि वह 6 दिशा में सीमित है।

अस्तित्व में इकाईयाँ स्पष्ट समझ में आती हैं। मिट्टी, पत्थर, वायु, पानी, पेड़, पौधे, पशु–पक्षी, मानव, अणु, परमाणु, ग्रह–गोल, आकाश–गंगा, यह सब इकाई स्वरुप हैं।

इकाई के अलावा अस्तित्व में एक और वस्तु स्पष्ट है – जिसे हम आकाश की संज्ञा देते हैं। हर दो इकाईयों के बीच में कुछ जगह है। जैसे पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच में खाली स्थान है – आकाश है। इस तरह से हर दो ग्रह–गोल के बीच में खाली जगह है। पृथ्वी पर देखें तो पृथ्वी में हर दो इकाई के बीच में भी खाली स्थान है। जैसे दो पक्षियों के बीच, दो मानव के बीच, दो पौधों के बीच, घर में हर दो वस्तु के बीच चाहे वह वस्तु कैसी भी हो जैसे मेज़, कुर्सी, बर्तन इत्यादि। इस खालीपन को हम आकाश कहते हैं। क्योंकि यह खालीपन हर जगह व्याप्त है –

इसलिए इसे हम व्यापक भी कहते हैं।

सम्पूर्ण अस्तित्व में इस प्रकार दो ही तरह की वास्तविकता है। एक तरह की वास्तविकता – इकाई है और दूसरी वास्तविकता आकाश है। इकाई सीमित है, आकाश असीमित है। इकाई का छोर है, आकाश का कोई छोर नहीं है।

इकाई कई प्रकार की हैं – जैसे पदार्थ के रूप में इकाई मिट्टी, पत्थर, धातु और उनसे निर्मित चट्टान, पहाड़, नदी, वायु, ग्रह गोल इत्यादि। प्राण अवस्था भी इकाई समूह है जैसे घास, पौधे, पेड़ इत्यादि। जीव–जानवर के रूप में इकाई विभिन्न प्रकार के जैसे मछली, पक्षी, हाथी, घोड़ा, गाय इत्यादि। ज्ञान अवस्था के रूप में मानव इकाई का रूप है। और फिर मानव के द्वारा निर्मित विभिन्न तरह की पदार्थ रूपी इकाई जैसे घर, गाड़ी, जहाज़, कपड़े, बर्तन इत्यादि। इस तरह से अपने चारों तरफ हम इकाई को पहचान पाते हैं।

हर इकाई स्वयं में एक व्यवस्था है – यानि उसके होने को मानव स्पष्ट रूप से समझ सकता है। वह इकाई कैसी भी हो मानव उसको समझ सकता है। किसी भी इकाई को पूर्ण रूप से समझने के लिए इकाई के चार आयाम को समझना पड़ता है – यह है इकाई का रूप, इकाई के गुण, इकाई का स्वभाव और इकाई का धर्म। इस तरह से हर इकाई रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के अविभाज्य रूप में मानव को समझ में आती है। यह इकाई की व्यवस्था है। इसमें से अगर हम कुछ आयाम को न समझें तो उस इकाई की पूरी समझ हममें नहीं बन पाती है और उस इकाई का जानना पूरा नहीं हो पाता है।

हर इकाई का रूप है यह हमें समझ में आता है। इकाई का स्वरूप अगर एक सीमा में हो तो वह हमें आँखों से दिखती भी है – जैसे हमारे वातावण में इतनी सारी इकाईयाँ हमें स्पष्ट रूप से दिखती हैं। परन्तु ऐसी इकाई भी होती हैं जो बहुत बड़ी हो जैसे कोई बहुत बड़ा पहाड़ या समुद्र तो इकाई का आंशिक रूप आँखों में समाता है। उसी प्रकार अगर इकाई बहुत छोटी हो जैसे कोई बहुत छोटा मिट्टी का कण या प्राण कोशा तब भी उसका रूप हमारी आँखों में नहीं समा पाता।

रूप से हम हर इकाई के आकार, आयतन और घन को इंगित करते हैं। आकार से उस इकाई की रूप–रेखा समझ में आती है जैसे उसकी ऊँचाई, लम्बाई, उसका गोलापन आदि। आकार के अलावा हर इकाई का एक आयतन भी होता है। आयतन यानि उसका फैलाव। आकार, आयतन

के अलावा हर इकाई में एक मात्रा भी होती है। इस मात्रा की समझ को हम घन कहते हैं। इस तरह से हर इकाई का रूप होता है और रूप में इन तीन वास्तविकताओं के रूप में मानव उसको समझता है – आकार, आयतन और घन।

रूप के साथ हर इकाई के कुछ गुण होते हैं। यह गुण मानव को इकाई के प्रभाव को समझने से आते हैं। जैसे आग पर पानी डालें तो आग बुझ जाती है। यह पानी का गुण है। हम पानी पीते हैं तो हमारी प्यास बुझती है – यह भी पानी का एक गुण है। नीम के टहनी से दातुन करने से हमारे दाँतों में कीड़े नहीं लगते – यह नीम का गुण है। गाय के दूध से हमारा शरीर पुष्ट होता है – यह दूध का गुण है। इस प्रकार हर इकाई के कुछ गुण होते हैं और मानव इनको समझ सकते हैं। रूप के साथ हर इकाई के गुण उस इकाई की व्यवस्था को स्पष्ट करता है।

अभी तक हमने इकाई के होने की व्यवस्था को रूप और गुण के आधार पर समझा। रूप और गुण के साथ–साथ हर इकाई दूसरी इकाईयों के साथ एक निश्चित दूरी बनाकर दूसरी इकाईयों के बने रहने के लिए और स्वयं के बने रहने के लिए कार्यरत है। हर इकाई बाकि इकाईयों के साथ एक व्यवस्था बनायें रखने के लिए प्रयत्नशील है। इकाई के इस आयाम को स्वभाव कहते हैं और रूप और गुण के साथ यह इकाई के व्यवस्था में होने की तीसरी वास्तविकता है – जो सभी मानव को समझ में आती है।

रूप, गुण और स्वभाव के साथ–साथ हर इकाई का व्यवस्था में होने का एक और आयाम है – इकाई का धर्म। इकाई का धर्म यानि इकाई के होने का वह तथ्य है, जिस तथ्य से इकाई अलग होती ही नहीं। जैसे एक पौधा का उदाहरण लेते हैं। किसी भी पौधे के होने की एक वास्तविकता यह है कि वह पौधा बीज से निकलकर बड़ा होता है और हर दिशा में पुष्ट होता है। उसकी लम्बाई बढ़ती है, उसकी जड़ें गहरी होती हैं, उसमें पत्तियाँ आती हैं, फूल, फल और बीज बनते हैं – इसको पुष्टि कहते हैं। यह हर पौधे में होता है और मानव को समझ में आता है। बिना पुष्टि के हम कोई भी पौधे की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। इस तरह पुष्ट होना हर पौधे का धर्म है। इस तथ्य से उसको अलग नहीं किया जा सकता है। हर इकाई का एक धर्म है जो उस इकाई के होने में अविभाज्य तथ्य है।

रूप, गुण, स्वभाव और धर्म – यह चार आयाम एक साथ हर इकाई की वास्तविकता हैं, उनके होने की व्यवस्था है – जो हर मानव को समझ में आती है। रूप, गुण, स्वभाव और धर्म अविभाज्य हैं, यानि साथ–साथ हैं और हर इकाई का पूर्ण स्वरूप हैं।

अभ्यास व अध्ययन

1. इकाई का क्या अर्थ है? कुछ प्राकृतिक इकाईयों की सूची बनाइए।
2. कुछ मानव निर्मित इकाईयों की सूची बनाइए।
3. व्यापक किसे कहते हैं?
4. हर इकाई की व्यवस्था को जानने के लिए किन–किन वास्तविकताओं को जानना होगा?
5. रूप को स्पष्ट कर दीजिए।
6. गुण क्या है?
7. स्वभाव को स्पष्ट कर दीजिए।
8. धर्म क्या है?

पाठ–21

शरीर–व्यवस्था

जैसे कि हम पहले पढ़ चुके हैं कि मानव ज्ञानावस्था की इकाई है और वह मानव जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है। जीवन, शरीर को चलाता है। जीवन अपनी समझ को, अपने संबंधों में भाव को व्यक्त करने के लिए शरीर को चलाता है। वह समझ को व्यक्त करता है ओर समझ के साथ संबंधों में जीता है। अपने शरीर को स्वस्थ रखता है और उसके साथ अपनी जागृति प्रमाणित करता है। शरीर अपने में एक व्यवस्था है। इसलिए शरीर की व्यवस्था समझ में आती है तो मानव उसे स्वस्थ बनाऐ रखते हैं। शरीर का स्वस्थ बने रहना सहज है।

मानव–शरीर में दो प्रकार की इन्द्रियाँ हैं जिनसे मानव (जीवन) अपनी समझ को व्यक्त करता है – कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ। ज्ञानेन्द्रियाँ उन इन्द्रियों को कहते हैं जिनके द्वारा जीवन वातावरण से सूचनाऐं ग्रहण करता है और कर्मेन्द्रियाँ उन्हें कहते है जिनके द्वारा जीवन कार्य करता है। जैसे शब्द (ध्वनि), स्पर्श, रूप, रस, गन्ध शरीर की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है जिनसे मानव सुनता, महसूस करता, देखता, चखता और सूंघता है। हाथ, पैर, जीभ, मल, मूत्र पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं जिनसे मानव कार्य करता है, चलता है, बोलता है, शरीर की सफाई करता है। इन दोनों प्रकार की इन्द्रियों का प्रयोजन (भागीदारी) और कार्य निश्चित है। जैसे चलते समय हाथ–पैर एक व्यवस्थित ढंग से हिलते हैं जिससे स्थिरता के साथ चलना संभव होता है। अर्थात ये इन्द्रियाँ अपने में एक व्यवस्था हैं।

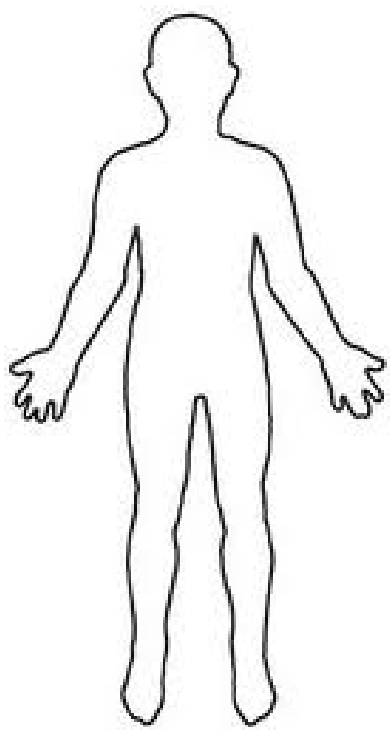

साथ ही, शरीर में अन्य तंत्र हैं – जैसे पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, रक्तसंचार तंत्र, श्वसन–प्रश्वसन तंत्र इत्यादि। पाचन तंत्र से हमारा भोजन शरीर में पचता है; भोजन–पाचन से उपलब्ध तत्व से रक्त पौषित होता है; रक्तसंचार तंत्र द्वारा, पोषित रक्त से शरीर के अन्य अंग भी पुष्ट होते हैं; श्वसन तंत्र से हम सांस लेते हैं

जिससे रक्त पुनः पोषित होता है और उत्सर्जन और पाचन–निष्कासन तंत्र से शरीर (रक्त) से गंदगी बाहर निकलती है। अर्थात् शरीर के सभी तंत्र का आपस में एक ताल–मेल है और प्रत्येक तंत्र अपने आप में भी व्यवस्थापूर्वक कार्यरत है। यह शरीर की व्यवस्था है।

मानव–शरीर पर वातावरण का प्रभाव होता है। जैसे, अधिक ठंड लगने पर शरीर कंपकपाता है। शरीर के कंपकपाने से शरीर में गर्मी पैदा होती है। इसी तरह, गर्मी में शरीर में पसीना आता है। इस पसीने से त्वचा और शरीर की सफाई होती है और शरीर ठंडा रहता है। शरीर का कंपकपाना या उसमें पसीना आना, शरीर में स्वतः होने वाली क्रियाएँ हैं, जिनसे शरीर की व्यवस्था बनी रहती है। अतः यह स्वतः होने वाली शारीरिक क्रियाएँ, शरीर का स्वयं एक व्यवस्था होने का प्रमाण है।

अधिक पसीना आने पर शरीर की स्वच्छता बनाए रखने के लिए गर्मियों में अक्सर दो बार भी नहा लेते हैं। हमारा शरीर 75% पानी से बना है और पसीना निकलने से शरीर में पानी की मात्रा कम होती है। इसलिए ग्रीष्म ऋतु में ज़्यादा प्यास लगना स्वाभाविक है और अधिक पानी पीना भी आवश्यक है ताकि उसकी पर्याप्त मात्रा शरीर में बनी रहे। इसी प्रकार से ठंड में त्वचा सूखी ओर शुष्क हो जाती है। त्वचा अथवा शरीर के पोषण के लिए तेल की मालिश आवश्यक है।

सार रूप में, शरीर और उसके सभी अंग–अवयवों में व्यवस्था है – निश्चित समय पर पाचन–निष्कासन होना, समय पर भूख लगना, समय पर एवं गहरी नींद आना आदि। शरीर की व्यवस्था बने रहने पर अर्थात् शरीर के स्वस्थ रहने पर समझने–समझाने एवं जीने के सभी आयाम में मानव अच्छी तरह भागीदारी कर सकते हैं।

अभ्यास व अध्ययन

1. मानव–शरीर में कितने प्रकार की इन्द्रियाँ हैं? कौन–कौन सी?
2. हमारे शरीर पर किस तरह से वातावरण का प्रभाव होता है?
3. ज्ञानेंद्रियाँ क्या काम करती हैं?
4. कर्मेन्द्रियाँ क्या काम करती हैं?
5. शरीर स्वयं एक व्यवस्था है, इसे उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

पाठ–22

आहार और औषधि

शरीर के माध्यम से हम चलते हैं, बोलते हैं, पढ़ते हैं, लोगों से मिलते हैं, सफाई करते हैं, भाजन पकाते इत्यादि हैं। हम अपने शरीर के द्वारा दिन–भर कुछ न कुछ कार्य करते रहते हैं और रात तक हमारा शरीर थक जाता है। शरीर के थकने से हमें गहरी नींद आती है। नींद से हमारे शरीर को आराम मिलता है क्योंकि इस दौरान हमारे शरीर के कर्मेन्द्रियों की गति धीमी हो जाती है। पर्याप्त नींद (आराम) शरीर की स्वस्थता के लिए अनिवार्य है। साथ ही, आहार भी हमारे शरीर के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। भोजन से शरीर को पोषण मिलता है। पोषण से शरीर को कार्य करने की ऊर्जा मिलती है। मानव शरीर एक भौतिक–रासायनिक वस्तु है जिसकी शक्ति (ऊर्जा) क्षय होती रहती है। जीवन की शक्ति अक्षय है यानि कि जीवन कभी नहीं थकता। जीवन में विचार निरंतर चलते रहते हैं। सोते समय भी हम विचार करते रहते हैं। इन विचारों को ही हम स्वप्न कहते हैं। इसलिए पोषण शरीर की आवश्यकता है न कि जीवन की।

शरीर में भाजन पचने से ही शरीर पोषित होता है। शरीर में जो भोजन आसानी से पचता है, वही आहार कहलाता है। आहार का सेवन मानव मुँह से करते हैं। आहार को हाथ से छोटे–छोटे टुकड़ों में तोड़ कर मुँह में डालते हैं। मुँह में अच्छे से चबाकर उसको रसीला बनाते हैं। इस प्रक्रिया से आहार पेट में आसानी से पहुँचता है और उसका पाचन होता है। भोजन पेट से आँतों में जाकर, पाचक रस के सहयोग से, रस बनता है। यह रस शरीर के अनुकूल होता है तथा रक्त में मिलकर उसको पोषित करता है। इस रस के अलावा जो बच जाता है वह शरीर के लिए अनावश्यक होता है। यह आँतों से मलाशय में जाकर शरीर से बाहर निकलता है। पाचन के

पश्चात अगर रस शरीर के प्रतिकूल है तो वह आहार में अशुद्धता का संकेत है या शरीर में रसों के असंतुलन का संकेत है। इस कारण से शरीर कमज़ोर होता है या शरीर में अस्वस्थता (रोग) पैदा होती है।

सही आहार शरीर के लिए अनुकूल होता है। आहार में रोटी, भात, सब्ज़ी, दाल, फल इत्यादि हैं। हम कुछ आहार कच्चा खातें हैं और कुछ आग पर पका कर खाते हैं। खीरा, टमाटर जैसी चीज़ें हम अक्सर कच्ची खाते हैं और दोलें, सब्जियाँ, चावल पका कर खाते हैं। आहार क्षेत्र और ऋतु अनुसार बदलता भी है। क्षेत्र के हवा, पानी से शरीर पर प्रभाव पड़ता है और उसी तरह ऋतु का प्रभाव भी शरीर पर होता है। वर्षा, ग्रीष्म, शीत ऋतु में अलग–अलग प्रकार की सब्ज़ियाँ उगती हैं। जैसे गर्मियों में शरीर को ठंडा करने वाली सब्ज़ियों की पैदावार होती है। प्रकृति में यह व्यवस्था है। गर्मियों में खीरा, प्याज़ कच्चा खाते हैं। इन सब्ज़ियों से शरीर को ठंडक मिलती है। इसी तरह किसी क्षेत्र के हवा, पानी, मिट्टी के अनुसार प्रकृति में मानव–शरीर के अनुकूल उपज पैदा होती है। जैसे सेब पहाड़ी इलाके में उगता है और वहाँ के निवासियों के लिए उपयोगी फल है और अमरूद मैदानी इलाके में उगता है और वहाँ के निवासियों के लिए पोष्टिक फल है। दक्षिण भारत में कम ठंड होने से दही जैसी चीज़ों का सेवन साल–भर होता है।

शीत ऋतु में शरीर को गर्म करने वाली चीज़ों का सेवन करते हैं जैसे साग, मूँगफली, गाजर, फूलगोभी, लहसुन, लौंग, पका हुआ प्याज़ और गर्मियों में शरीर को ठंडा करने वाली चीज़ों का सेवन करते हैं जैसे दही, छाच, लस्सी, खीरा, करेला, पेठा, कद्दू। साथ ही, ठंड से शरीर को गर्म रखने के लिए तेल की मालिश करते हैं, शारीरिक श्रम करते हैं, ऊन के कपड़े पहनते हैं। इसी तरह गर्मियों में शरीर को ठंडा रखने के लिए नमकीन निम्बू पानी या नमकीन लस्सी या छाच पीते हैं। गर्मियों में मटके का पानी पीने से प्यास बुझती है। ग्रीष्म ऋतु में ज्वर से बचने के लिए पान और तुलसी का उपयोग करते हैं।

अधिक ठंड में दही जैसी चीज़ों को खाने से शरीर में ज़ुकाम या खाँसी की संभावना रहती है। सर्दी–ज़ुकाम में हल्दी–दूध के सेवन से शरीर स्वस्थ रहता है। साथ ही, शहद और सौंठ के घोल को चाटने से ज़ुकाम ठीक होता है। सरसों के तेल या गाय के घी से छाती और पैर के तलुएं की मालिश और सरसों के तेल या गाय के घी को नाक से सुड़कने से भी सर्दी, ज़ुकाम और खाँसी में आराम मिलता है। सरसों के तेल या गाय के घी को सुड़कने से नाक की नली में

चिकनाहट बढ़ती है और अन्दर की गंदगी बाहर निकलती है। इसलिए ज़ुकाम और खाँसी के दौरान हम बहती हुई नाक साफ़ करते हैं और गले में बलगम को थूकते हैं।

इसी तरह शरीर में अस्वस्थता को दूर करने के लिए औषधि का प्रयोग होता है। औषधि शरीर में सहजता से पच जाती है और शरीर में जिन आवश्यक तत्वों की कमी है उसे पूरा करती है या शरीर में रसों के असंतुलन को संतुलित करती है। शरीर में कोई प्रतिकूल पदार्थ बनने पर औषधि उसे शरीर से मल–मूत्र द्वारा बाहर निकालती है। अतः औषधि, शरीर की व्यवस्था को पुनः स्थापित करती है। औषधि के स्रोत पदार्थावस्था से मिट्टी, पत्थर, खनिज, मणि, धातु; प्राणावस्था से अनेक प्रकार के वनस्पति और जीवावस्था से दूध, दही, घी है। अधिकतर औषधि की सामग्री हमारे घर एवं आस–पास में उपलब्ध हैं जैसे हल्दी, ज़ीरा, अदरक, अजवाइन, मेथी, धनिया, शहद, तुलसी, नीम आदि।

शरीर की समझ, उसकी आवश्यकता की समझ और उसके लिए सही आहार की समझ से हमारा स्वास्थ्य बना रहता है। शरीर की व्यवस्था को बनाये रखने की ज़िम्मेदारी स्वीकारना ही संयम है। यह भाव हममें समझ के आधार पर सहजता से आता है। स्वास्थ्य और संयम अविभाज्य है। इसलिए हमारा ध्यान शरीर की व्यवस्था पर जाता है तो हम स्वस्थ और संयमित रहते हैं।

अभ्यास व अध्ययन

1. शरीर के स्वास्थ्य के लिए क्या–क्या आवश्यक है?
2. आहार किसे कहते हैं?
3. आहार का मुँह से सेवन होने के बाद क्या–क्या होता है?
4. गर्मियों में किस तरह का आहार लेते हैं?
5. ठंड के मौसम में किस तरह का आहार लेते हैं?
6. गर्मियों में शरीर की देखभाल किन औषधियों से करते हैं?
7. ठंडी में सर्दी–जुकाम होने पर किन औषधियों का उपयोग करते हैं?

8. औषधियाँ क्या–क्या करती हैं?
9. संयम किसे कहते हैं?

गतिविधि

(शिक्षक के लिए) हर छात्र/छात्रा किस तरह का आहार हर ऋतु में लेते हैं, इस पर चर्चा करें। शरीर अस्वस्थ होने पर किन दवाईयों का प्रयोग करते हैं, इस पर भी बात करें।

पाठ–23

मानवीय उत्पादन–कार्य

निरंतर सुखी रहने के लिए समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह–अस्तित्व की समझ पूर्वक जीना अनिवार्य है। समाधान प्रत्येक व्यक्ति मे होने पर या अधिकांश में होने पर परिवार मे समृद्धि संभव है।

समृद्धि के लिए उत्पादन ही एक मात्र कार्यक्रम है। मानव शरीर को स्वस्थ्य बनाए रखने के लिए अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। ये वस्तुएँ उत्पादन से ही प्राप्त होती हैं। समृद्धि उत्पादन से ही संभव है।

प्रकृति में अनेक वस्तुएँ हैं। इनमें से किसी वस्तु पर श्रम नियोजन कर मानव के उपयोगी बनाने की प्रक्रिया उत्पादन है। उदाहरण के लिए कपास एक वृक्ष का फल है। इसके परिपक्व फल से रूई प्राप्त होती है। इस रूई से कपड़ा बनाया जाता है। रूई से कपड़ा बनाना उत्पादन है। वृक्ष में लगी हुई रूई बीज सहित होती है। यह वृक्ष में लगे रहने पर मानव उपयोगी नहीं होती। फल पकने के पश्चात बीज सहित रूई भूमि पर गिर जाती है। रूई सड़कर खाद बन जाती है एवं बीज से कपास के पौधे बन जाते हैं। रूई को मानव उपयोगी बनाने के लिए कपास के परिपक्व होते ही रूई को तोड़कर लाया जाता है। साफ स्थान पर रखकर उसके बीज अलग किए जाते हैं। अब रूई उपयोग के लायक होती है। इस प्रक्रिया में श्रम लगता है। इसी प्रकार रूई पर पुनः श्रम नियोजन किया जाता है इससे सूत बनाया जाता है। सूत बनाना उत्पादन कहलाता है। सूत पर पुनः श्रम नियोजन पूर्वक वस्त्र बनाए जाते हैं। प्रकृति में पाये जाने वाले वस्तुओं को श्रम

नियोजन पूर्वक मानवोपयोगी बनाना उत्पादन है।

उत्पादन प्रक्रिया का उद्‌देश्य मानव की आवश्यकता को पूरा करना एवं समृद्धि को अनुभव करना है। मानव, परिवार में जीता है; अतः परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना आवश्यक है। उत्पादन का उद्देश्य परिवार व्यवस्था में भागीदारी कर समृद्धि का अनुभव करना है। इस प्रकार परिवार व्यवस्था सार्वभौम व्यवस्था का अंग होने के कारण, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदार होती है। समाधान–समृद्धि पूर्वक जीने वाला परिवार स्वायत्त परिवार कहलाता है। स्वायत्त पूर्वक न जीना ही पराधीनता है। पराधीन व्यक्ति या परिवार दुखी रहते हैं एवं दुख फैलाते हैं। मानव की आवश्यकता सीमीत है इस लिए उत्पादन द्वारा आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है।

मानवीय समाज में मुख्यतः 2 प्रकार के उत्पादन होते हैं। प्रथम, सामान्य आवश्यकता का उत्पादन एवं द्वितीय, महत्वाकांक्षा का उत्पादन। सामान्य आंकाक्षा में आहार, आवास, अलंकार, स्वास्थ्य संयम एवं शिक्षा–संस्कार की वस्तुएँ आती हैं। महत्त्वाकांक्षा में दूरश्रवण, दूरदर्शन एवं दूरगमन की वस्तुएँ आती हैं।

उत्पादन के लिए मुख्यतः तीन प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता है।

1. प्राकृति ऐश्वर्य
2. उपकरण
3. श्रम

1. **प्राकृतिक ऐश्वर्य** : मानव के अलावा शेष तीनों आवस्थाएँ प्राकृतिक ऐश्वर्य कहलाती हैं। ये हैं पदार्थ अवस्था, प्राण आवस्था और जीव अवस्था। इनसे ही उत्पादन–कार्य सम्पन्न होता है। जैसे कृषि के लिए भूमि, बीज, खाद, जल, की आवश्यकता होती हैं। भूमि, खाद एवं जल पदार्थ अवस्था की वस्तुएँ हैं। बीज प्राण अवस्था की वस्तु है।
2. **उपकरण** : उत्पादन–कार्य के लिए अनेक प्रकार के यंत्र एवं उपकरण प्रयोग में आते हैं। जैसे मकान बनाने के लिए फावड़ा, गैंती, सब्बल, साहूल, सूत्र, करनी जैसे उपकरणों की आवश्यकता होती है। अलग–अलग प्रकार के उत्पादन में अलग–अलग प्रकार के उपरकणों

की आवश्यकता होती है।

3. **श्रम** : उत्पादन प्रक्रिया में श्रम एक बहुत महत्वपूर्ण भाग है। श्रम के द्वारा ही प्राकृतिक ऐश्वर्य को मनचाहा आकार दिया जाता है। जैसे लोहे के टुकड़े को पीटकर खीला बनाया जाता है, या हँसिया बनाया जाता है। यह पीटना श्रम कहलाता है। इस प्रकार सभी उत्पादनों में श्रम अनिवार्य है। बार–बार एवं दीर्घकालीन श्रम करने पर कम श्रम में श्रेष्ठ कार्य होने लगता है।

प्रत्येक उत्पादन के लिए भिन्न प्रकार से श्रम नियोजन किया जाता है। जैसे धान की फसल को हसिए से काटा जाता है। यह एक प्रकार का श्रम है। घड़ा बनाने के लिए पहले मिट्टी को पानी में मिलाकर साना जाता है। फिर इसे चक्के में रखकर मनचाहा गोल आकार दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति प्रथम बार आकार देने का प्रयास करे तो यह बहुत अच्छे से नहीं होता, कभी–कभी बिगड़ भी सकता है। यह दोनों भिन्न प्रकार के श्रम हैं। प्रत्येक प्रकार के श्रम के लिए प्रशिक्षण लिया जाता है। प्रशिक्षण से श्रम करने का तरीका स्पष्ट होता है। प्रशिक्षण के उपरान्त अभ्यास किया जाता है। अभ्यास द्वारा जीवन शरीर को साधता है। अभ्यास पूर्वक ही दीर्घकाल तक श्रम करने में सफलता मिलती है। अभ्यास पूर्वक विशेष प्रकार के श्रम योग्य मांस–पेशियाँ विकसित होती हैं। इस प्रकार श्रम नियोजन प्रक्रिया 2 चरण में पूरी होती है–प्रथम चरण है प्रशिक्षण एवं द्वितीय चरण है अभ्यास।

उत्पादन के योग्य शरीर को तैयार करने का उपयुक्त समय किशोर आयु है। अधिक आयु होने पर शरीर को श्रम के लिए तैयार करने में कठिनाई आती है। प्रौढ़ होने पर श्रम के लिए तैयार करना संभव नहीं होता है। बाल्यकाल में खेल–कूद, दौड़ शारीरिक श्रम के लिए अभ्यास का प्रथम चरण भी है।

परिवार व्यवस्था में भागीदारी प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। परिवार व्यवस्था में भागीदारी के लिए उत्पादन और उत्पादन के लिए श्रम अनिवार्य है। अतः प्रत्येक वयस्क व्यक्ति श्रमशील होने पर व्यवस्था में भागीदारी करता है। श्रम प्रत्येक समझदार व्यक्ति के लिए अनिवार्य भाग है।

अधिक आयु के व्यक्ति जैसे प्रौढ़ एवं वृद्ध श्रम नहीं कर सकते हैं। परन्तु जो लोग पहले श्रम किए हैं वे अन्य लोगों को प्रशिक्षण दे सकते हैं एवं उत्पादन की पूरी प्रक्रिया का निरीक्षण कर सकते हैं। इससे उत्पादन की गुणवत्ता को बनाए रखा जाता है।

कठोर शारीरिक श्रम का विकल्प भी मानव के पास है। ऐसे कार्य के लिए पशुओं का प्रयोग बहुत समय पूर्व से ही किया जा रहा है। जैसे सामान की ढुलाई के लिए हाथी, घोड़े, बैल एवं भैसों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार पूरी भूमि को खोदने का कार्य पशुओं से कराया जाता है। हल के द्वारा खेतों को जोता जाता है। मानव की तुलना में कुछ पशु अधिक बलशाली होते हैं, उन्हें इस कार्य में लगाया जाता है।

पिछले दो सौ वर्षो से पशु श्रम का विकल्प भी ढूंढा गया है। इसे ईंधन कहा गया है। इसके लिए प्राणावस्था की वस्तुएँ बहुत प्रयोग की जाती है जैसे लकड़ी एवं वनस्पति तेल। ईंधन से उष्मा प्राप्त होती है। उष्मा को विभिन्न उपयोग द्वारा यांत्रिक एवं विद्युत शक्ति में बदला जाता है। जैसे वाष्प ईंधन में ईंधन से उष्मा पैदा की जाती है। इस यांत्रिकक प्रक्रिया में उष्मा के द्वारा पानी को वाष्प बनाया जाता है। इस वाष्प के दवाब से रेलगाड़ी के चक्कों को घुमाया जाता है। दूसरा उदाहरण विद्युत का है। इसमें ईंधन के द्वारा पहले उष्मा पैदा की जाती है। उष्मा से पानी को वाष्प बनाया जाता है। इस वाष्प द्वारा जनरेटर को चलाकर विद्युत तैयार की जाती है।

ईंधन के लिए सूर्य की उष्मा और बहते हुए जल का भी प्रयोग होता है। बहुत समय पूर्व से बहते हुए जल से पनचक्की चलाई जाती है। इससे गेहूँ पीसने जैसे कार्य किए जाते हैं। इसी बहते हुए जल की शक्ति से जल–विद्युत तैयार किया जाता है। इसी प्रकार वायु के तरंग से भी विद्युत तैयार की जाती है। ये सब धरती की सतह पर पाए जाने वाले पदार्थ हैं।

उत्पादन प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण भाग है – आवर्तनशीलता। आवर्तनशीलता का अर्थ है – कोई कार्य बार–बार होते रहे एवं हमेशा होते रहे। जैसे वर्षा चक्र। नदी–तालाब का जल गर्मी से वाष्प बनता है इस वाष्म से बादल बनते हैं एवं बादल पुनः वर्षा के द्वारा पानी बन जाता है। यह चक्र चलता रहता है। इसमें पानी कभी नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार उत्पादन में भी आवर्तनशीलता अनिवार्य है। जैसे हमें भोजन की आवश्यकता होती है। प्रत्येक वर्ष कृषि के द्वारा अन्न उत्पादन होता रहे यह आवर्तनशील कृषि कहलाती है। इस प्रकार मुख्यतः 3 बिन्दुओं पर आवर्तनशीलता अनिवार्य है :

1. उत्पादन की आवर्तनशीलता

2. श्रम की आवर्तनशीलता

3. ईंधन की आवर्तनशीलता

आवर्तनशील होने पर ही उत्पादन मानवीय व्यवस्था में निरन्तर होने की संभावना बनी रहती है। इसी प्रकार श्रम एवं ईंधन भी उपलब्ध होना एक अनिवार्यता है। उत्पादन व्यवस्था में इन तीन बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है।

अभ्यास व अध्ययन

1. उत्पादन किसे कहते हैं?
2. उत्पादन करना क्यों आवश्यक है?
3. मानवीय समाज में कितने प्रकार के उत्पादन होते हैं? कौन से?
4. उत्पादन के लिए कितने प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होती है? उदाहरणों सहित बताइए।
5. श्रम नियोजन प्रक्रिया कितने चरणों में पूरी होती है? कौन से?
6. विभिन्न उपकरण को चलाने के लिए ईंधन को किन तरीकों से पाया जाता है?
7. उत्पादन में किन चीजों की आर्वतनशीलता ज़रूरी है?

पाठ–24

मानवीय विनिमय–कोष

प्रत्येक परिवार अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर भौतिक समृद्धि का अनुभव करता है। साथ ही, एक परिवार अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुओं का उत्पादन नहीं कर पाता है। यह संभव भी नहीं है क्योंकि मानव अनेक प्रकार की वस्तुओं का उपयोग करता है। इसलिए प्रत्येक परिवार अपनी आवश्यकता की किसी वस्तु को अधिक मात्रा में उत्पादन करता है। इस उत्पादन से अपने लिए आवश्यक वस्तुओं को रख लेता है – यह कोष कहलता है। शेष बचे हुए वस्तुओं को अन्य परिवारों को देकर अपने लिए आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करता है। इस प्रकार का आदान–प्रदान विनिमय कहलता है। इस प्रकार हम यह स्पष्ट रूप से समझते हैं कि विनिमय की आवश्कयता उत्पादक की है। विनिमय, उपभोक्ता की भी आवश्यकता है। विनिमय से दोनों पक्षों की आवश्कयता की पूर्ति होती है – इसलिए ये पस्पर पूरक हैं। इससे दोनों पक्षों की समृद्धि होती है। इस प्रक्रिया में यह भी स्पष्ट होता है कि उत्पादक स्वयं ही विनिमय प्रक्रिया में भागीदारी करता है। इस प्रकार उत्पादन एवं विनिमय संयुक्त रूप में समृद्धि के लिए एक मात्र कार्यक्रम है।

उत्पादन की सबसे छोटी व्यवस्था परिवार है। समृद्धि भी परिवार में ही प्रमाणित होती है। अतः विनिमय की भी सबसे छोटी इकाई परिवार ही है। मानवीय व्यवस्था की मूल इकाई परिवार है।

कई ऐसे उत्पादन हैं जो एक परिवार के द्वारा संभव नहीं हैं। इसमें अनेक परिवारों की आवश्यकता होती है। जैसे वस्त्र उद्योग। इसमें कपास उत्पादन से लेकर वस्त्र निर्माण, रंगाई तक अनेक चरण होते हैं एवं अनके परिवार मिलकर इस प्रक्रिया को पूरा करते हैं, अतः इसे हम परिवार समूह का कार्य कह सकते हैं। इसी प्रकार ऐसे भी अनेक प्रकार के उत्पादन हैं जिन्हें करने के लिए ग्राम व्यवस्था या मुहल्ला व्यवस्था या इससे भी बड़ी व्यवस्था की इकाई एक साथ भागीदारी करते हैं। इसमें दूर संचार के यंत्र एवं उपकरण आते हैं। इस प्रकार उत्पादन की इकाई परिवार व्यवस्था, परिवार समूह व्यवस्था, ग्राम/मुहल्ला व्यवस्था, नगर व्यवस्था होते हैं एवं विनिमय भी वही व्यवस्था की इकाई करती है जो उत्पादन करती है।

विनिमय प्रक्रिया में वस्तुओं का विनिमय होता है। अर्थात एक वस्तु देकर दूसरी वस्तु ली जाती है। इसमें एक प्रश्न उठता है कि एक वस्तु देकर दूसरी वस्तु कितनी ली जाए ? जैसे धान और कपड़े का विनिमय करना है। धान की एक निश्चित मात्रा के बदले कितना कपड़ा दिया जाना है? इसी प्रकार कपड़े एवं मोटर साइकिल का विनिमय होना है तो इसकी विधि क्या हो कि विनिमय करने वाले दोनों पक्ष संतुष्ट हों ?

विनिमय पूरकता है, विनिमय व्यवस्था में भागीदारी है। पूरकता में दोनों पक्ष तृप्त होते हैं। व्यवस्था में भागीदारी करने पर समृद्धि संभव है। अतः इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है कि विनियम प्रक्रिया में भागीदारी करने वाले दोनों पक्ष संतुष्ट हों। इस प्रक्रिया को वस्तु का 'मूल्य आंकना' कहते हैं।

विनिमय प्रक्रिया लाभ–हानि रहित होने पर ही दोनों पक्ष संतुष्ट होते हैं। यही मानवीय परम्परा है।

अभ्यास व अध्ययन

1. विनिमय किसे कहते हैं? इसमें कौन–कौन भागीदार होते हैं?
2. कोष किसे कहते हैं?
3. वस्तु का मूल्य किस तरह से आंकते हैं?

पाठ–25

न्याय–सुरक्षा

मानवीय व्यवस्था में न्याय–सुरक्षा एक अनिवार्य कार्यक्रम है। न्याय और सुरक्षा साथ–साथ होते हैं – अर्थात न्याय होने पर किसी व्यक्ति की या अनेक व्यक्ति की सुरक्षा होती है। न्याय का फल सुरक्षा है। सुरक्षा के लिए अलग से कोई उपाय नहीं करना पड़ता। इसके विपरीत अन्याय होने पर असुरक्षा फैलती है।

मानवीय व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई परिवार है। परिवार सम्बन्ध–प्रधान व्यवस्था है। सम्बन्धों में जीकर मूल्यों का निर्वाह होना न्याय कहलाता है। जैसे, माता संतान का पोषण–संरक्षण करती है और ममता के मूल्य को अनुभव करती है। यह उसका संतान के प्रति न्याय पूर्ण व्यवहार कहलाता है। इससे संतान सुरक्षित रहती है एवं परिवार सुखी रहता है। इसी प्रकार सभी सदस्य न्याय पूर्वक जीने में समर्थ होते हैं तो पूरा परिवार सुरक्षित रहता है, सुखी रहता है।

मानव के अलावा प्रकृति की अन्य इकाइयों के साथ पूरक होना भी न्याय है। यही प्रकृति की सुरक्षा भी है। मानव कर्म करने में स्वतंत्र है। प्रकृति की शेष तीन अवस्थाएँ कर्म करने में स्वतंत्र नहीं है। मानव प्रकृति के शेष तीनों आवस्थाओं के पूरक हो सकता है – पूरक होने पर प्रकृति की सुरक्षा होती है। यदि भ्रमवश या अज्ञानवश मानव प्रकृति के पूरक नहीं हो पाए, प्रकृति का शोषण करे तो प्रकृति में व्यवधान पैदा होता है।

प्रकृति की कुछ इकाईयों का मानव सदुपयोग करता है। यह सदुपयोग ही उस वस्तु की सुरक्षा है।

उदाहरण के लिए मानव ने गेहूँ की उपयोगिता को पहचाना। इसके पश्चात गेहूँ की प्राप्ति करने के लिए कृषि करता रहा। इस क्रम में समय पर बीज बोना, फसल के अनुकूल भूमि तैयार करना, समय पर काटना, अगले वर्ष पुनः बोने के लिए बीज को सुरक्षित रखता है। इस तरह मानव गेहूँ की प्रजाति की सुरक्षा करने लगा।

अतः सदुपयोग एवं सुरक्षा साथ–साथ हैं। सदुपयोग समझ में आने पर सुरक्षा होती है।

इसी तरह मानव – मानव प्रकृति के साथ सम्बन्ध को पहचानने एवं निर्वाह करने से न्याय एवं सुरक्षा होती है। शेष प्रकृति के साथ उपयोगिता–पूरकता विधि से न्याय एवं सुरक्षा होती है। मानवीय व्यवस्था में सुरक्षा के सम्पूर्ण आयामों को निम्न बिन्दुओं में पहचानते एवं अध्ययन करते हैं :

1. शिक्षा–संस्कार सुरक्षा
2. उत्पादन–सुरक्षा
3. विनिमय–सुरक्षा
4. प्राकृतिक ऐश्वर्य–सुरक्षा
5. स्वास्थ्य–सुरक्षा
6. नैतिक–सुरक्षा

समझदार मानव उपरोक्त सभी प्रकार के सुरक्षा में समर्थ होता है। ऐसे समझदारी पूर्ण आचरण को मानवीयता पूर्ण आचरण कहते हैं। मानीवयता पूर्ण आचरण करना स्वयं मानवीय व्यवस्था में भागीदारी करना है। मानवीयता पूर्ण आचरण मूल्य, चरित्र और नैतिकता का संयुक्त रूप होता है।

मूल्य का अर्थ है – मानव सम्बंध में जीने पर सभी स्थापित एवं शिष्ट मूल्यों का निर्वाह करना। चरित्र का अर्थ है – स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष एवं दयापूर्ण कार्य व्यवहार करना। नैतिकता का अर्थ है – तन, मन एवं धन का सदुपयोग करना। मानव लक्ष्य में जीना ही मानवीयता पूर्ण आचरण है।

अभ्यास व अध्ययन

1. न्याय क्या है?
2. सुरक्षा कब होती है?
3. सुरक्षा कितने आयामों में पहचानते हैं?
4. मानवीयतापूर्ण आचरण किसे कहते हैं?